सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिकपत्र

संस्थापक, सम्पादक तथा संचालक

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सत्य और नाम सिद्धि

वर्ष २

अङ्क ११

वार्षिक मूल्य

१० रुपया

एक अंक

१ रुपया

फरवरी

१९७०

सब से ऊँची प्रेम सगाई ।

दुरयोधन को मेवा त्यागो साग विदुर घर खाई ॥
जूठे फल सबरी के खाए बहुबिधि प्रेम लगाई ।
प्रेम बिबस नृप सेवा कीन्हो आप बने हरि नाई ॥
राजसु जग्य जुधिष्ठिर कीन्हों तामें जूंठ उठाई ।
प्रेम के बस अर्जुन रथ हाँक्यो भूलि गए ठकुराई ॥
ऐसो प्रीति बढ़ो बृन्दाबन गोपिन नाच नचाई ।
सूर कूर इहि लायक नाहीं कहें लगि करौं बड़ाई ॥

—भक्त सूरदास

इस अङ्क में कहाँ—क्या ?

—❀०❀—

प्रकाशक :—
श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवाई एत्मादपुर
आगरा

संयुक्त सम्पादक
श्री 'दिव्य'

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. परमात्मा की उपलब्धि	श्वेताश्वतारोपनिषद से	१
२. सत्य और वाक्-सिद्धि (विशेष लेख)	योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३. दिव्य दर्शन की चाह (कविता)	॰ ईश्वरीप्रसाद खड्डर	१०
४. अध्यात्म-चिन्तन	श्री सुधाकर उपाध्याय	११
५. सीखो (कविता)	श्री कृष्णमुरारीजी दुबे	१४
६. योग सन्त श्री रज्जब	श्रीमती सरिता शर्मा	१५
७. परम प्रिय भक्त	श्री सन्त ज्ञानेश्वर	१६
८. बूझन योगी	.....	२०
९. सिद्ध-सिद्धि और समाधि भाषा	श्री रमेशचन्द्र मिश्र	२३
१०. अनन्य गुरु भक्त महाराज छत्रसाल	एक साधक	३२
११. नर-देह (कविता)	श्री जगदीशशरण बिलगैया	३३
१२. योग-प्रचार का कार्य-क्रम	श्री रामेश्वरदासजी भार्गव	३४
१३. सत्यं शिवं-सुन्दरम्	श्री बनवासी	४७
१४. श्री गुरुदेवजी का कार्यक्रम	..... (टाइटिल का)	३
१५. कर्मयोग	स्वामी रामतीर्थ "	४

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवाई एत्मादपुर
आगरा

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष २ | अङ्क ११

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्'
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः' ॥

फरवरी १९७०

परमात्मा की उपलब्धि

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पि-
रापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ
सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद्

अर्थ—तिल में तेल, दही में घी, स्रोतो में जल और अरणियों में अग्नि जिस प्रकार छिपे रहते है उसी प्रकार वह परमात्मा अपने हृदय में छिपा हुआ है। जो कोई साधक इसको सत्य के द्वारा और संयम रूप तप से देखता रहता है यानी उसका चिन्तन करता रहता है उसे वह परमात्मा अवश्य ग्रहण किया जाता है। यानी ऐसे संयमी सत्य साधक को विवेक द्वारा चिन्तन करने पर परमात्मा अवश्य प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

हमारा विशेष लेख—

सत्य और वाक्-सिद्धि

[योगयोगेश्वर पूज्यपाद अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज]

—◉◦◉—

सत्य के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करते हुये योगदर्शन में भगवान् व्यासदेव ने निम्नाङ्कित पंक्तियाँ लिखी है :—

सत्यं = यथार्थे वाङ्मनसे, यथा दृष्टं यथानुमिते यथा श्रुतं तथा वाङ्-मश्चेति, परत्र स्वबोध सङ्क्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्तावा प्रति पत्ति बन्ध्या वा भवे दिति एषा सर्व भूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघात परै व स्यान्न सत्यं भवेत्, पापमेव भवेत्, तेन पुण्याभासेन पुण्य प्रतिरुपकेण कष्टतम प्राप्नुयात ॥

अर्थात् यथार्थ वाणी जैसी देखी, सुनी व अनुमान की हुई, दूसरों को अपना अर्थ समझाने के लिये न वंचना से युक्त, न भ्रान्ति-युक्त व न असंपष्टार्थ कही हुई, जो प्राणीमात्र के परोपकार के लिये, मनसा-वाचा-कर्मणा सत्य प्रयुक्त होती है वही वाणी सत्य कहलाती है। इसी के द्वारा प्राणीमात्र का भला होता है। इसलिये सत्यवादन अहिंसा की निर्मलता के लिये और इसी प्रकार अस्तेय आदि जो हैं वे भी अहिंसा की निर्मलता के लिये, अन्य सब प्रकार के व्रताचरण अहिंसा धर्म को ही परिपुष्ट करते हैं। यह अहिंसा किसी जाति, किसी देश और किसी काल व समय से युक्त नहीं और सार्वभौमिक अहिंसा हो तो महाव्रत कहलाती है। यथा भगवान् पतञ्जलि के शब्दों में :—

जाति देश काल समया-
नवच्छिन्ना सार्वभौमा महाव्रतम् ।
(योगसूत्र २।३१)

सत्य के लिये उपनिषदों में बड़े-बड़ शब्द मिलते हैं।

सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म ।

सत्य प्रभ का रूप है व वाणी का तप है।

तैत्ति० २।१।१

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा-
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अंतः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो
य पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥
सत्यमेव जयते नानृत सत्येन
पन्था विततो देवयान ॥

अर्थात् जो सत्य, ज्ञान, ब्रह्मचर्य के द्वार ही अंतः शरीर में शुभ्र ज्योतिर्मय आत्मा को देखता है, जिसको द को क्षीणकर यति

लोग मुश्किल से देख पाते हैं। हमेशा सत्य की ही जय होती है। देवों का मार्ग सत्य से विस्तृत है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने श्री मद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के तेईसवें श्लोक में सत शब्द ब्रह्म का नाम बतलाया है। यथा :—

ॐ तत्सदिति निर्देशो
ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च
यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

अर्थात् ॐ तत् सत् यह तीन प्रकार का ब्रह्म का ही नाम है। व इसी के द्वारा वेद, यज्ञ व ब्राह्मणों का विधान हुआ। इसी प्रकार का संकेत उपनिषदों में स्थान-स्थान पर भरा है। सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तैत्ति० २-२-१-१) सत्यं ब्रह्म— बृहदारण्यक उपनिषद् ५-५-१ अर्थात् सत्य ही ब्रह्म है।

श्री विष्णु सहस्र नाम में भगवान को:—

सत्यः सत्यं पराक्रम कहकर स्तुति की गयी है। श्री मद्भागवत पुराण के दशम स्कंध के दूसरे अध्याय में गर्भ-स्तुति के वर्णन में श्री भगवान् कृष्णचन्द्र को परम सत्य व सत्यात्मक शब्दों से सम्बोधित करके स्तुति की है। यथा :—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्ययोनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्यसत्यामृत सत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरण प्रपन्नाः॥

अर्थात् हे प्रभो! आप सत्य व्रत, सत्य-परायण व तीनों कालों में परम सत्य हैं। सत्य ही आपकी प्राप्ति का मुख्य साधन है। क्योंकि आप सत्यात्मक हैं।

उन सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्दघन प्रभु का स्वरूप सत्य है। वे स्वयं सत्य हैं, सत्य स्वयं परब्रह्म है। सत्य की महाशक्ति का वर्णन करते हुये हमारे पूर्वजों ने बड़े ऊँचे स्वर से कह दिया कि :—

सत्येन वायुरवाति सत्ये-
नादित्यो रोचते दिवि सत्यं वाचः।
प्रतिष्ठा सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं
तस्मात्सत्यं परं वदन्ति।

—नारायणोपनिषद् ७६

सत्य ही जय का मुख्य साधन है।

सत्यमेव जयते नानृतं,
सत्येन पंथा विततो देवयानः।
येना क्रमन्त्यृषयो ह्याप्त कामाः
यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानं॥

—मुण्डकोपनिषद् ३-१-६

अर्थात् सदा-सर्वदा सत्य की ही जय होती है। इस सत्य का अवलम्ब लेकर ऋषि लोग आप्तकाम हो गये व उस सत्यके परम प्रतिष्ठा-रूप प्रभु को सरलता से प्राप्त कर लिया। भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के वनवास हो जाने के बाद उनको लौटाने के विचार से गये हुये वशिष्ठ वामदेव आदि गुरुजनों के प्रति सत्य की महिमा को हृदय में धारण करते हुये श्री रामचन्द्रजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा :—

सत्यमेवानृशंसं च
राजवृत्त सनातनम्।
तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं
सत्यो लोके प्रतिष्ठितः।
ऋषयश्चैव देवाश्च
सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादी ही लोकेस्मिन
परं गच्छति चाव्ययम्।
उद्विजन्ते यथा सर्पा-
न्नरादनृतवादिनः।
धर्म सत्य परो लोके
मूलं सर्वस्य चोच्यते।
सत्यमेवेश्वरो लोके
सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्य मूलानि सर्वाणि,
सत्यान्नास्ति परमपदम्।
दत्तमिष्टं हुतं चैव
तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्य प्रतिष्ठाना
स्तस्मात्सत्यपरो भवेत्।

-वाल्मीकीय रामायण
(अयोध्याकाण्ड सर्ग १ १०.१४)

अर्थात् सत्य ही सनातन राजवृत्त है। राज्य की लोक की सत्य ही में प्रतिष्ठा है। ऋषि-मुनि व देवता सभी ने सत्य को माना है। यही सनातन धर्म है। सत्यवादी ही इस लोक में अव्यय पद को प्राप्त करता है। जिस प्रकार मनुष्य सर्प से डरते हैं इसी प्रकार अनृतवादी से डरना चाहिए। क्योंकि इस संसार में सत्य ही परम तत्त्व है व सभी शुभों का मूल है।

इस लोक व परलोक में सत्य ही ईश्वर है। धर्म सदा सत्य के आश्रित है। सत्य विश्व का मूल है। सत्य से बढ़ कर कोई तत्त्व नहीं है। सत्य ही परम तत्त्व है। सभी दान, अनुष्ठान, यज्ञ व तप सत्य में आधारित हैं। इसी प्रकार चारों वेद सत्य द्वारा ही प्रतिष्ठा पाने वाले हैं। अतः कल्याण चाहने वालों को सत्यपरायण होना चाहिये। इस प्रकार सत्य की महान् महिमा को बतलाकर भगवान् श्री रामचन्द्र जी अपने व अपने पिता जी के सत्य वचन के पालनार्थ अयोध्या नहीं लौटे।

ठीक इसी भाव को गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने अपनी रामायण में स्पष्ट लिखा है :—

सत्य मूल सब सुकृत सुहाये,
वेद-पुरान विदित मनु गाये।
धर्म न दूसर सत्य समाना,
आगम निगम पुरान बखाना।
नहिं असत्य सम पातक पुंजा,
गिरि सम होइ कि कोटिक गुंजा।

इसी प्रकार अन्य सन्तों की वाणियों में भी सत्य की महान् महिमा का वर्णन कूट-कूट भरा पड़ा है।

जाके हृदय साँच है, वाके हृदय आप।

अर्थात् जिसके हृदय में सत्य है, वहीं प्रभु का भी वास है। ठीक यही भाव महाभारत में व अन्यान्य आर्षग्रन्थों में भरे पड़े हैं।

अश्वमेध सहस्रं च,
सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेध सहस्रेभ्यः
सत्यमेव विशिष्यते।
सर्ववेदाधिगमनं,
सर्वतीर्थावगाहनम्।
सत्यं च वचनं राजन्,
समं वा स्यान्नवासमम्।
नास्ति सत्य समो धर्मो,
न सत्याद्विशिष्यते परम्।
न तीव्रतरं किंचिद्-
नृतादिह विद्यते।

—महाभारत आदिपर्व ७४-१०-१०५

अर्थात् सहस्रों अश्वमेधयज्ञ की तुलना करें तो सत्य ही उत्कृष्ट है। इसी प्रकार सारे वेदों का पढ़ना, तीर्थ-स्नान, सत्य की तुलना में नहीं आसकते। सत्य के समान कोई धर्म नहीं है व असत्य के समान घोर पातक नहीं है।

महाभारत के शांतिपर्व के १६२ वें अध्याय में श्री भीष्म पितामह ने बड़े ऊँचे शब्दों में सत्य का व्याख्यान किया और अन्त में यहाँ तक कह दिया कि—

नान्तो शब्दो गुणानां च
वक्तुं सत्यस्य पार्थिव।
अतः सत्यं प्रशंसन्ति
विप्रा सर्षिद् देवता।

इसी प्रकार महाभारत के अनुशासन पर्व में-

सत्येन सूर्यस्तपति
सत्येनाग्नि प्रदीप्यते।
सत्येन मारुतो वान्ति
सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।
सत्येन देवा प्रीयन्ते
पितरो ब्राह्मणास्तथा।
तस्मादाहु परो धर्म-
स्तस्मात्सत्यन्नलंघयेत।
मुनयः सत्य निरताः
मुनयः सत्य विक्रमाः।
मुनयः सत्य शपथा
स्तस्मात्सत्यं विशिष्यते।

अर्थात् सत्य की महिमा का वर्णन कहाँ तक करें। सब ऋषि-मुनि देवता स्थान स्थान पर सत्य की ही महिमा गाते हैं। सत्य से सूर्य तपता है। सत्य से वायु बहता है, अग्नि तपता है। सत्य से ही सब प्रतिष्ठित हैं। देव लोग, मुनि, ब्राह्मण सत्य से प्रसन्न होते हैं। अतः कभी भी सत्य का उलंघन नहीं करना चाहिये। सब ऋषि-मुनियों का बल सत्य ही है। इसी प्रकार के भावों से वेद-शास्त्र व पुराण भरे पड़े हैं।

श्री मनुजी महाराज ने अपनी मनुस्मृति के अध्याय आठ के ९६ वें श्लोक में निशङ्क सत्यवादी को बड़ा ऊँचा महत्व दिया है। यथा—

यस्य विद्वान हि वदतः
क्षेत्रज्ञो नाभिशंकते ।
तस्मान्न देवा श्रेयांसो
लोके अन्यं पुरुषं विदुः ।

—मनुस्मृति अध्याय ८ श्लोक ९६

अर्थात् निशङ्क सत्यवादी का देवता लोग भी परम आदर करते हैं और उसको बड़ा मानते हैं । इसी प्रकार मनुस्मृति के चौथे अध्याय में प्रिय एवं सत्य बोलने को ही सत्य सनातन धर्म बतलाया है।

एक महात्मा का दृष्टान्तः—

एक स्थान पर एक महात्मा निवास करते थे। उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था कि वे मनसा वाचा कर्मणा सत्य - वादी रहेंगे और अपने नियमानुसार उन्होंने सत्यव्रत का पूर्ण रूपेण पालन किया। वह महात्मा यह अनुभव करते थे कि जो वाणी मुख से निकालेंगे वह वह सत्य ही होगी । वे महात्मा अपने मुख से जो भी शब्द कह दिया करते, प्रभु की पूर्ण कृपा से वे शब्द यथार्थ हो जाते थे।' सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफला श्रयत्वम' पतञ्जलि योग दर्शन का यह सिद्धान्त उनके जीवन में पूरा घटित होगया - था। उपर्युक्त सूत्र का अर्थ है जो व्यक्ति सत्य प्रतिष्ठ होता है अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा जो सत्य का पालन करता है, उसकी वाणी-क्रिया फलवती हो जाती है अर्थात् वाणी से जो कुछ वह कहा करता है प्रकृति उसको स्वीकार कर लेती है । वह परिणाम स्वरूप सत्य तत्काल दिखाई देने लगता है। इसी सिद्धान्तानुसार वे महात्मा अपने मुख से जो कुछ भी कहते वह तत्काल हो जाया करता था। महात्मा का जन्म पवित्र ब्राह्मण कुल में हुआ था। वे पूर्ण सत्यप्रतिष्ठ एवं सदाचारी थे।

एक बार वे योग-प्रचार करते हुये रोहतक प्रान्तान्तर्गत किसी गाँव में गये। वहाँ पर एक ब्राह्मण बालक को भूतोन्माद की बीमारी लगी हुई थी। उसका इलाज उन्होंने अपनी मानसिक शक्ति से किया और उसे आराम हो गया जिसके फलस्वरूप उनके सत्संग का उस गाँव में काफी प्रचार हो गया। उस गाँव में यह महात्मा लगभग पन्द्रह–बीस दिन रहे। इसके बाद दूसरे गाँव में जाने के लिये लिये उन्होंने अपनी तारीख निर्धारित करदी। माघ का महीना था, सर्दी काफी पड़रही थी। महात्मा को सुबह चारबजे उठकर उस गाँव से लगभग चार या छः मील पर एक बस-स्टेशन पर पहुँचना था, जहाँ से बस में बैठ-कर उन्हें पानीपत जाना था और पानीपत निर्धारित समयानुसार यदि वे प्रातः ९ बजे तक पहुँचजाते तो निश्चित स्थान पर जाने वाली रेलगाड़ी पकड़ी जासकती थी बिलम्ब हो जाने पर वह गाड़ी नहीं पकड़ी जासकती थी। हुआ भी ऐसा ही । अपने निर्धारित समयानुसार उस ग्राम से प्रातः चार बजे चलना था। पर अकस्मात् उस दिन वर्षा आरंभ हो गयी और वर्षा के साथ ओले भी गिरने शुरू हो गये। माघ का महीना अत्यंत शीत प्रधान था ही उसमें साथ-साथ ओले गिरने से बड़ा ही भयंकर समय उपस्थित हो गया। ऐसी स्थिति में

वहाँ से चलना किस प्रकार संभव हो सकता था। किन्तु महात्मा सत्यवादी थे अपने वचन की रक्षा के लिये ऐसी स्थिति में भी चलने को तैयार हो गये। गाँव वालों ने उनको बहुत मना किया। सवारी भी कोई जा नहीं सकती थी।

महात्मा ने गाँववालों से कहा कि हमारा बिस्तर और शेष सामान तुम बाद में पहुँचाना। स्वयं अपने वचन का पालन करने के लिये ठीक चार बजे वहाँ से एक छाता लेकर निकल पड़े। गाँववालों ने बहुत आश्चर्य से देखा कि महात्माजी आधा फर्लांग भी जा नहीं पाये थे कि अचानक ही वर्षा बन्द होगयी - ओले भी गिरने बन्द होगये। बादल फटगये। चाँद खिल उठा। गाँव के लोग महात्माजी का बिस्तर लेकर चल पड़े, किन्तु रास्ता पानी का था, इसलिये बस स्टैन्ड पहुँचते - पहुंचते लगभग दस बजगये। उनके पहुंचने के पहले दो-तीन बसें निकल चुकी थीं। किसी तरीके से भी - वह गाड़ी पकड़ लेना संभव नहीं था, जिसमें उन्हें पानीपत होकर जाना था। किन्तु अपने वचन का प्रमाण रखते हुये महात्मा वहाँ से एक बस में सवार होगये। उनके साथ ही दो-एक सत्संगी भी चले। जिस समय वे पानीपत से रेलवे- लाइन को पार करने लगे लोगों ने आश्चर्य से देखा कि जिस गाड़ी में उन्हें सवार होना था वह खड़ी है और चलनेके लिये सीटी देरही है। महात्माजी से सत्संगी कहने लगे कि गुरुजी ! यह गाड़ी दो घंटे लेट होगयी, मिलेगी भी आपको नहीं। किन्तु महात्माजी ने अपने साहस को नहीं छोड़ा। वे स्टेशन पर चले गये और फुर्ती से जाकर गाड़ी में बैठगये। उनके एक सत्संगी ने टिकट खरीद कर उनको दे दिया। ज्योंही टिकट महात्माजी के हाथमें आया, त्योंही गाड़ी चल पड़ी और अपने वचनानुसार वे गन्तव्य स्थान पर ठीक समय पर पहुंच गये। यह महात्माजी की सत्य संकल्पता - का ही शुभ परिणाम था।

इससे भी अधिक सत्य प्रतिष्ठिता और भी ऊँची होती है। महात्मा के सत्य में थोड़ा-सा अभाव हो गया था,। इसलिये बीच में थोड़ा सा अन्तरायरूप वर्षा - ओले इत्यादि आगये अन्यथा सत्यवादी का सत्य तो इतना उत्कृष्ट है कि वचन कह देने पर उसके रास्ते में कोई अन्तराय हो ही - नहीं सकता था।

सत्य की साधना की पराकाष्ठा सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरी भूमिका में जाकर होती है। सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरा भूमिका का नाम है – अस्मितानुगतसमाधि। जिस समय योगी योगाभ्यास करना आरंभ करता है, तो वह सम्प्रज्ञात योग की पहली भूमिका में अपना कदम बढ़ाता है। सम्प्रज्ञात समाधि का लक्षण करते हुये भगवान् पतंजलिदेव ने एक सूत्र का उल्लेख किया है, और वह है इस प्रकार—

वितर्क विचारानन्दास्मिता नुगमात संप्रज्ञातः।

अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि के चार अंग हैं। जिसमें 'वितर्कश्च चित्तस्य आलम्बने स्थूला भोगः' अर्थात् वितर्कानुगत समाधि में योगी अपने चित्त को स्थूल विषयों में धारण करके

एकाग्र करता है। यह समाधि सिद्ध हो जाने के बाद दूसरी समाधि की भूमिका अपने आप प्रारम्भ हो जाती है। जिसको शास्त्रीय परिभाषा में विचारानुगम योग या विचारानुगत समाधि कहते हैं। यह संप्रज्ञात योग की दूसरी भूमिका है। पहली भूमिका में स्थूल विषयों का साक्षात्कार करता हुआ योगी भूमण्डलान्तर्गत दृश्यों को अधिक मात्रा में देखता है। इसलिए इस समाधि का नाम वितर्कानुगत योग या वितर्कानुगत समाधि कहा गया है। यह समाधि सिद्ध हो जाने के बाद योगी को दूसरी श्रेणी की भूमिका अपने आप आरंभ हो जाया करती है। उस समाधि का नाम विचारानुगत समाधि है। विचारानुगत समाधि प्रथम श्रेणी की समाधि वितर्कानुगत योगकी अपेक्षा सूक्ष्म है और इस समाधि का अभ्यास करता हुआ योगी लोक-लोकान्तरों के दृश्यों को अधिक मात्रा में अनुभव करता है इसलिए इसका नाम विचारानुगत योग है। जब योगी इस समाधि की पराकाष्ठा पर पहुँचता है तो उसके आगे आनन्दानुगत समाधि की तीसरी भूमिका स्वतः ही आरंभ हो जाया करती है। आनन्दानुगत समाधि का अर्थ है—

'आनन्दोऽह्लादः'

अर्थात्—इस समाधि में मनुष्य को परम आह्लाद होता है। वह अखण्ड मण्डलाकार व्यापक स्वरूप में परम आह्लाद के साथ विचरण किया करता है। जब यह समाधि पराकाष्ठा पर पहुँचती है तो उस समय सम्प्रज्ञात योग की चौथी भूमिका अस्मितानुगत योग स्वतः ही आरम्भ हो जाता है। और उस अस्मितानुगत योग में योगी को दो प्रकार की ताकतें अनायास ही प्राप्त हो जाया करती हैं। पहली शक्ति निर्बीज चित्त की योग्यता अर्थात् इस समाधि में चित्त निर्बीज की पूरी-पूरी योग्यता योगी को प्राप्त हो जाया करती है। वह योगी चाहे तो अपने हजारों चित्र बनाकर एक साथ हजार व्यक्तियों के साथ बात-चीत कर सकता है। हजारों से मिल सकता है और हजारों पर अपना प्रभाव कायम कर सकता है इस अस्मितानुगत समाधि में दूसरी शक्ति ऋतम्भरा प्रज्ञा की है। भगवान् पतञ्जलिदेव कहते हैं:- 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ है- 'ऋतं सत्यं बिभर्तिया सा ऋतम्भरा'।

इस समाधि में योगी को इस प्रकार सीद्धि प्राप्त हो जाती है, जिसमें ऋत का वास हुआ करता है। वह योगी जो कुछ सोचता है सत्य सोचता है जो करता है सत्य करता है। यदि उसके मन में विचार आता है कि अमुक स्थान में वर्षा हो रही है तो वर्षा हो ही रही होती है अन्यथा यह विचार आयेगा ही नहीं। उसके सभी संकल्प सत्य होते हैं। उस योग के मन में असत्य लवलेश मात्र को नहीं रह पाता। वह सत्य संकल्प बन जाता है।

सम्प्रज्ञात समाधि की साधना की पराकाष्ठा ऋतम्भरा प्रज्ञा में ही होती है। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा वस्तुतः समाधि की साधना से साधक को प्राप्त हुआ करती है किन्तु जो

मनुष्य मनसा-वाचा कर्मणा सत्यवादी है एवं सत्यवादिता का पूर्ण अभ्यास करता रहता है, उसे तीनमास के अभ्यास के बाद ही अपनी वाणी में बल मालूम पड़ता है और जो कुछ कह दिया करता है वह सत्य होने लगता है। सत्य-वादन के एक साल के अनवरत अभ्यास करने से योगी को वाक्-सिद्धि स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। उसकी वह सत्यवादिता वरदान का काम करती है। तीन महीने के सत्य बोलने के अभ्यास हो जाने के बाद असत्य स्वाभाविक ही पीछे हट जाता है। यदि कोई असत्य बोलने का मौका उसके सामने आता है तो योगी के हृदय में एक विशेष प्रकार का कम्पन-सा आरम्भ हो जाता है और वह सोचने लगता है कि मेरी वाणी से कोई असत्य शब्द न निकल जाय, जो मेरे सत्य पर आघात पहुँचाने वाला हो।

गोस्वामी तुलसीदास जी के कथनानुसार —सत्य मूल सब सुकृत सुहाये। संसार का प्रत्येक कार्य सत्य पर आधारित रहता है। सत्यवादी के हृदय में स्वतः ही ईश्वर का वास होजाया करता है। 'जाके हृदय साँच है, वाके हृदय आप।'

इसलिये परम श्रेयाभिलाषी साधक को चाहिये कि जहाँ वह अन्यान्य साधनाओं का अभ्यास करता है वहाँ उसका सत्य बोलने का अभ्यास भी पूर्णरूपेण होना ही चाहिये। ऐसा होजाने के बाद उसके हृदय में स्वतः ही प्रकाश रहने-लगता है और वह दिव्यानुभूतियों का पात्र बन जाता है। किन्तु एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये वह यह कि— मनुष्य को सत्य तो बोलना चाहिये किन्तु प्यारा सत्य - बोलना चाहिये। कटु सत्य में अनेक प्रकार की हानियाँ निहित रहा करती हैं। किन्तु योगी अपने सत्य के बल के प्रभाव से बहुत बड़ी प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह मनसा - वाचा कर्मणा सत्य बोलने का अभ्यास करे।

—०—

वाणी की सत्यता का मापदण्ड विचार एवं आचार है। यदि विचारों में सत्यता नहीं है वहाँ संघर्ष चल रहा है, नाश-विनाश की योजनाएँ बन रही हैं, तो वाणी में सत्यता आ ही नहीं सकती। यदि कभी वाक्-छल के द्वारा विचारों की असत्यता को आवृत्त करने का प्रयत्न भी किया गया, तो कर्म उसे निवारण कर देगा। सत्य एक प्रज्वलित दीपक है, उसे कभी छिपाया नहीं जा सकता। अतः वाणी की सत्यता का महत्व मन एवं कर्म पर ही निर्भर है। एक धूर्त एवं दुष्ट व्यक्ति भी दूसरे को धोखा देने के लिए वाणी का सत्य बोल सकता है। परन्तु, उसके इस सत्य को विष-कुम्भ पर अमृत का ढक्कन मात्र कहा है। वह केवल ऊपर से सत्य प्रतीत होता है, परन्तु अन्दर में हलाहल जहर है, प्राणनाशक है। अतः शास्त्रकारों ने इसे सत्य नहीं, असत्य ही कहा है। वस्तुतः वह यथार्थता एवं सत्यता से कोसों दूर है।

—उपाध्याय श्री अमरमुनि महाराज

दिव्य-दर्शन की चाह

[श्री ईश्वरी प्रसादजी खत्री, झाँसी]

तुम्हारे दिव्य-दर्शन की
तमन्ना ले के आया हूं।
प्रभो! अब तो कृपा कर दो
तुम्हें मुश्किल से पाया हूं॥

गुनाहों से भरा शीशा, फकत तौहफे में लाया हूं।
प्रभो! अब तो कृपा कर दो, तुम्हें मुश्किल से पाया हूँ॥

मरा विष खा के बाबूसिंह
प्रभु ने ही जिलाया था।
वहा गंग कूप के भीतर
दरस सबको कराया था॥

ख्याले रहम की तेरी, नजीरें साथ लाया हूं।
प्रभो! अब तो कृपा कर दो, तुम्हें मुश्किल से पाया हूं॥

कृपा की मेढ़ केवट पर
दरस भगवन् कराया था।
गोपाला नन्द का लेखा
तुम्हीं निज तन चुकाया था॥

पतित लाखों को तुम तारे, करिश्मे नाम पाया हूँ।
प्रभो! अब तो कृपा कर दो, तुम्हें मुश्किल से पाया हूँ॥

निवारण कष्ट का करती
तुम्हारी रज सवाँई की।
बनाती पशु से मानव है
कृपा श्री चन्द्रमोहन की॥

योगेश्वर नाथ दुखियों के, तसव्वर करके आया हूं।
प्रभो! अब तो कृपा कर दो, तुम्हें मुश्किल से पाया हूँ॥

अध्यात्म-चिन्तन

[श्री सुधाकर उपाध्याय]

जगद्गुरु शङ्कर का यह उपदेश सार है कि मानव मात्र विचार करे "मैं कौन हूं" नश्वर जड़ देह और चेतन आत्मा का सम्बन्ध क्या और किस लिये है?

जननी के जठर में सर्व प्रथम यह जीव ही आता है पुनः किञ्चित काल उपरान्त शरीर का निर्माण होता है और शरीर त्याग करके जीव पहले चला भी जाता है। चर्मावृत खोल देह इस जीवात्मा का भोगायतन ही सिद्ध हुआ जिस के द्वारा अनेकों प्रकार के सुख-दुख आदि द्वन्दों का सृजन करता रहता है, शरीर के किसी अंग में पीड़ा होने पर जीवात्मा कष्ट अनुभव करता है, अच्छी वस्तुओं का उपभोग कर के जीवात्मा सन्तुष्ट भी होता है एवं शरीर के वृद्ध रोग ग्रस्त होने पर उसका उत्साह स्मृति आदि भी शिथिल हो जाते हैं इसी से "शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्" भी कहा गया है।

परन्तु वरीयता दी ही नहीं गई है अपितु सत्य है कि अपने साधन यन्त्र इस शरीर के द्वारा सभी प्रकार के दृश्य, श्राव्य, स्वाद वस्तुओं का उपभोग करने वाला जीव ही मुख्य वस्तु है क्योंकि जब जीव देह त्याग कर देता है उस समय देह विकृत, घृणित और मिट्टी ही मान लिया जाता है जो सत्य है। शरीर के प्रति आकर्षण उस जीवात्मा के कारण है महान आत्मायें दुर्बल और क्षीण शरीर में निवास करके उसे पूजनीय और यशस्वी बना देती हैं। जीव यदि शरीर का दास हो जाता है तो वह अविवेकी मान लियाजाता है प्रमाण में मानस की यह चौपाई है—

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं।
जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं॥

यह जीवात्मा क्या है— जिस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिकों ने परमाणुओं को विखंडन करके अनेक गुप्त शक्तिओं का अनुसंधान किया है उसी तरह विज्ञानी महर्षियों ने बड़े ऊहापोह के बाद विश्लेषण करके सूक्ष्म चेतन अन्तः करण में निवास करने वाले परम पुरुष को जीव माना है श्री मद्भागवत का पुरञ्जनोपाख्यान रूपक से यह बात सिद्ध होती जाती है। सूक्ष्म शरीर या चेतन अन्तः करण चार अंगों से बना है इन्हीं चारों की सहायता से जीवात्मा अनेक प्रकार के भोगों को भोक्ता और अनेक कार्यों को करता हुआ कर्त्ता बना हुआ है, सब से पहले चित्त की चिन्तन किये वस्तुओं को मन संकल्प करके प्राप्ति कीचेष्टा करता है बुद्धि की सहायता से अहं कर्त्ता अहं भोक्ता का भाव बनाता है, कभी भोगासक्त हो आवागमन के चक्रजाल में फंसता है तो कभी योग रत हो उस जाल से छूटने का प्रयास करता है। इस प्रकार संकल्पों से प्रारब्ध रूपी संस्कारों को जो गत जन्मों की विरासत रूप

में भोगा करता और नये संकल्पों द्वारा विविध शरीर धारण करता है। कुत्सित संकल्प न हों अतः यजुर्वेद में प्रार्थना है कि हे प्रभो! तन्मे मन शिव-संकल्पमस्तु" अर्थात् यह हमारा मन शुभ-संकल्प वाला होवे। शुभ संकल्पसे मेरे विचार शुद्ध तथा कल्याण-कारी होंगे तथा कार्य पुण्य जनक होने से मानव जन्म सार्थक होगा। यदि मन बुद्धि के अधीन कर दिया जाय तो वह शुभ संकल्प वाला हो जाता है क्योंकि बुद्धि की सहायता ज्ञानेन्द्रियाँ करती है और वह निर्णयात्मिका है परन्तु मन की सहायता कर्मेन्द्रियाँ करती हैं और वह संकल्प विकल्पवाला है। विकल्पों के द्वारा वह अच्छे और अशुभ कर्मों का निर्णय नहीं कर पाता।

संसार के प्राणी मात्र की यह उत्कट अभिलाषा रहती है कि हम सदा सफलता प्राप्त करें और तथा शान्तिमय जीवन यापन करें। परिणाम दोनों का एक ही है और दोनों की एक वस्तु से ही प्राप्ति भी की जाती है इस रहस्य की कुंजी मन और प्राण शक्ति के एकी-करण में है। मन की एकाग्रता तथा प्राण-शक्ति की सहायता मिल जाने पर शान्ति और सफलता अनायास मिल जाती है। चाहे लौकिक कार्य हो या पारलौकिक पुरुषार्थ— इसी का नाम योग है इससे ही दिव्य आत्मायें चित्त वृत्ति के निरोध के लिये प्राणायाम तथा धारणा-ध्यान का आश्रय लेती है। मन के एकाग्र होने पर प्राण शक्ति द्वारा हमारे श्वास पिण्ड से ब्रह्माण्ड तक पहुंच सकते है और उस महा प्रकाश से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं जहाँ से सभी कीरी-कुंजर को प्रकाश मिलता है।

यह मन चञ्चल क्यों है? इसमें चञ्च-लता कहाँ से आई? हम चक्षु इन्द्रिय द्वारा देखते हैं, कानों से सुनते हैं, नासिका से गन्ध ग्रहण करते हैं, रसना से स्वाद लेते और त्वचा से स्पर्श करते है, इन्द्रियों के विषयों द्वारा हमारे मानस पर विविध विचार बनते रहते हैं विचारों के अनुसार ही हमारे मन के द्वारा संकल्प होता है, इन्हें प्राप्त करने पर सुख प्राप्त न करने पर दुख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि के द्वारा शुभाशुभ वासनाओंका अम्बार मस्तिष्क में अमिट छाप की तरह पड़ जाता है इन्हीं को हम संस्कार कहते हैं कभी अच्छे कर्म करने वाले भी दुखी देखे जाते हैं और बुरे तथा क्रूरकर्मी सुखी देखे जाते हैं, कभी सुसंगति में रहकर भी हम जघन्य काम कर बैठते हैं और कुसंगति में पड़ कर भी भक्त और दैवी सम्पत्तियों से युक्त बन जाते हैं इनमें उनके संस्कार ही सहायता करते हैं अपितु ऐसा संस्कारों का ही यह खेल है। इस प्रकार चित्त-वृत्तियों की यह धुड़दौड़ अहर्निश होती रहती है जिससे चित्त-वृत्तियाँ बहिर्मुखी बनकर आत्मा का शुभ्र प्रकाश चेतना अन्तःकरण पर नहीं पड़ने देकर वह मलीन और धुंधला ही बना रहता है इस काई को हटाने के लिए ही शास्त्र तथा उससे अनुमोदित कार्य है परन्तु सब मिथ्या ही है—

रजत सीप महँ भास जिमि,
यथा भानु कर बारि।

यदपि मृषा तिहुँ काल मह;
भ्रम न सकै कोउ टारि॥

सन्त तुलसी की वाणी है–जैसे सीप में चाँदी का भ्रम और सूर्य-किरणों में जल का भ्रम है उसी तरह यह संसार सब-का-सब भ्रम ही है और मिथ्या है। विचारणीय यह है कि परछाही प्रतिध्वनि और सीपी में मिथ्या भ्रम होने पर भी उससे भय, कम्प तथा चाँदी की भावनाका संचार होजाता है उसी तरह देहादि मिथ्या वस्तुओं में भी अज्ञानियों को सत्य की प्रतीति होती है ज्ञानी इसे असत्य ही मानते है, इस मिथ्या भ्रम को हटाने के लिये हमें सुयोग्य, पूर्णशक्तिमान सद्गुरु की शरण लेनी चाहिए जो इस संसार के भ्रम तथा पूर्ण सत्ता से मिल एकाकार हो गया हो जिसके ससर्ग मात्र से ही हमारे मानस में दिव्य अनुभूतियाँ होने लगें। उसके बताये पथपर चलने से अभ्यास करने पर स्वतः मन एकाग्र होता जायगा। काई कटती जायगी और दिव्य प्रकाश की रेखा दीखने लग जायगी।

अभ्यास साधन का तथा वैराग्य संसार से। बिना संसार से वैराग्य हुए साधना का अभ्यास भी दुष्कर है क्योंकि मन जहाँ निरन्तर रहा है उधर ही जाना चाहता है अतः राजयोग इसका सर्वोत्तम मार्ग है। इस विषयी मन को भगवत् चरणारविन्दों में लगा देने से गुरुदेव के पूजन आरती में संलग्न करा देनेसे कर्म जनित कुत्सित संस्कार स्वतः नष्ट होने लगेंगे, उपनिषद् का यह रूपक प्रसिद्ध है। आत्मारूपी रथी देहरूपी रथ पर सवार है इन्द्रियाँ घोड़े है जो विषयरूपी रास्ते पर चल रहे हैं।

अतः मन रूपी सारथी रथी को कहीं कुपथ पर न ले जाय, सांसारिक विषय न देकर परमेश्वर की ओर उसका बागडोर मोड़ देने की आवश्यकता है। यदि हम जिसे अपना मानते हैं तथा जिसे अपना न मान कर पराया मानते हैं सब में परमात्म-बुद्धि बना लें तो रथ सुपथ पर ही चलता रहेगा। जप-तप-सत-संयम नियमादि सब इसी मार्ग के लिये साधन हैं परन्तु यह भी विवेकमय होना चाहिये यदि विवेकहीन तप हुआ तो इस के द्वारा साधकका कल्याण नहीं होता, बन्दरों ने श्री राम जी से कहा कि नाथ रावण एक यज्ञ कर रहा है यदि पूर्ण हो गया तो वह नहीं मर सकता प्रभु के द्वारा उस यज्ञ का विध्वंसकर दिया गया, क्यों? वह विवेकहीन था उसके द्वारा वह संसार को वश मे करना चाहता था, उत्पीडन और कष्ट उसके परिणाम थे। अतः ज्ञान की दो श्रेणियाँ हैं (१) वाचिक ज्ञान (२) अनुभव जन्य ज्ञान—इनमें अनुभव ज्ञानी महात्माओं के संसर्ग को पाकर ऐसे पूर्ण सद्गुरु कर्णधार को पाकर अपना उद्धार कर लेना चाहिए।

नृदेह माद्यं सुलभं सुदुर्लभं,
प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्।
भयानुकूलेन नमस्व तेरितं,
युमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥

मनुष्य शरीर, गुरु कर्णधार भगवत्कृपा रूपी वायु को पाकर जो अपना उद्धार न करले वह आत्म-हत्यारा ही है।

सीखो

[श्रीकृष्णमुरारीजी दुबे]

सुमनों से सीखो प्रिय साथी !
सबके सु-मन रिझाना।
और कंटकों में भी रहकर,
मन्द-मन्द मुसकाना॥

× × ×

कोकिल से सीखो तुम सबको
मीठे बोल सुनाना।
झरनों से सीखो पथरीले
पथपर बढ़ते जाना॥

+ × +

सागरसे सीखो गहराई
और हिमगिरिसे दृढ़ता।
क्षमादान सीखो धरती से,
गंगा से पावनता॥

× + +

चींटी से भी सीखो साथी !
प्रतिपल अति श्रम करना।
स्नेहपूर्ण दीपक से सीखो,
घर-घरका तम हरना॥

+ + +

सीकर अच्छी सीख दिखाओ,
तुम अपनी भावता।
पाप-पुञ्ज-तम दूर करो तुम,
दूर करो दानवता॥

योगी सन्त श्री रज्जब

[श्रीमती सरिता शर्मा एम० ए०, बी-एड०]

+❀+

यहाँ पर मैं एक ऐसे उच्चकोटि के सन्त के विषय में लिखने जा रही हूँ जो ब्रह्मचर्यावस्था का पालन करते हुए १२२ वर्ष तक जीवित रहने वाले थे तथा जिन्होंने साधन द्वारा सिद्धावस्था को प्राप्त किया था। यह थे महात्मा रज्जब। रज्जब महात्मा दादूजी के प्रमुख शिष्यों में से थे। साधना के साथ ही साहित्य रचना व कवित्वकी दृष्टि से भी सन्त साहित्य में आपका महत्वपूर्ण स्थान है।

आपका जन्म राजस्थान के अन्तर्गत जयपुर के समीप सांगानेर नामक नगर में हुआ था। आपके पिता आंबेर नरेश की सेना में एक छोटे से सैनिक थे। आपका बचपन का नाम 'रज्जब अलीखाँ' था। आप बचपन से ही बड़े विचारशील तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाले सत्संगी थे आपका विवाह आंबेरमें एक अच्छे घराने के पठान के यहाँ निश्चित हो गया था। बरात सजकर सांगानेर से आंबेर जाने लगी तो श्री रज्जब जी को ज्ञात हुआ कि आंबेर के समीप वन में श्री महात्मा दादूजी विराजते हैं। बस, फिर क्या था। दर्शन की उत्कट इच्छा रखने वाला रज्जब दूल्हा के भेष में ही दादूजी के आश्रम की ओर चल दिया।

संत दादूजी महाराज उस समय रामबाग के पूर्व की ओर पर्वत की जड़ में रहा करते थे। जिस समय रज्जब जी अपने साथियों के साथ महात्मा दादूजी के दर्शन के लिए उनके समीप पहुंचे उस समय वह ध्यानस्थ थे। रज्जबजी शान्त श्रद्धाभाव से वहीं बैठ गये। थोड़ी देर बाद लोगों ने उनसे चलने के लिए कहा परन्तु वह बिना बात किए चलने के लिए तैयार नहीं हुए। बेचारे बराती बिना दूल्हे के भी नहीं जा सकते थे अतः वे भी चुप बैठ गए। थोड़ी बाद जब श्री दादूजी का ध्यान टूटा तो रज्जब जी ने दण्डवत् प्रणाम किया और ठीक सामने बैठ गए। आँखें खोलते ही दादूजी ने अपने सामने एक ऐसे युवक को देखा जो दूल्हा भेष में है तथा जिसका मुख मण्डल देखने में अति सुन्दर शान्त तथा ज्ञान पिपासा युक्त है। दादूजी सभी स्थिति तुरन्त समझ गए और अपनी कृपा दृष्टि डालते हुए रज्जब से वे बोले ——

"कीया था शुभ काम को,
सेवा कारण साज।
दादू भूला वन्दगी,
सरे न एक हु काज॥"

अर्थात् तुम्हारा यह शरीर भगवान ने शुभ कार्य को कराने के लिए तथा अन्यों से कराने के लिए उत्पन्न किया था किन्तु हे युवक! तुम ईश्वर भक्ति को भूल गए हो और जिस विवाह रूप कार्य को करने जा रहे हो उस कार्य से तो तुम्हारा एक भी कार्य सिद्ध नहीं होगा अर्थात् न तो ईश्वर भक्ति होकर

सकोगे और न सांसारिक आशा ही पूर्ण कर सकोगे। भाव यह है कि सांसारिक भोग तो सृष्टि के आरम्भ से ही भोगते रहे हो अब तो तुम्हें ईश्वर प्राप्ति का साधन करना चाहिए। दादूजी ने तो उक्त वचन ही कहा था किन्तु आजकल जो वचन विशेष प्रचलित है वह यह है—

रज्जब तैं गज्जब किया,
शिर पर बाँधा मौर ।
आया था हरि भजन कौं,
करै नरककौ ठौर ॥"

बस, फिर क्या था श्री दादू के यह शब्द रज्जबजी के हृदय पटल को बेध कर सीधे अन्तरात्मा में प्रवेश कर गए। गुरूजी के संकेत मात्र से ही रज्जब जी का जीवन ही बदल गया। उन्होंने सांसारिक जीवन त्यागने का दृढ़ निश्चय कर लिया और अपना सेहरा उतार का छोटे भाई के सिर पर रख दिया और कहा — "जाओ तुम विवाह कर लो मैं अब विवाह नहीं करूँगा।"

यह सुनकर पिता को बड़ा दुःख हुआ। बरात में तथा कन्या पक्ष में बड़ी हलचल मच गई। कोई रज्जबजी को तो कोई महात्मा दादूजी को गाली देने लगा। कुछ रज्जबजी के त्याग, वैराग्य की प्रशंसा करने लगे। ऐसी स्थिति देखकर दादूजी उन्हें समझाने लगे जाओ तुम विवाह करलो नहीं तो फिर नारियों की ओर देखोगे। गुरुदेव का यह वचन सुनकर रज्जबजी तुरन्त बोल उठे —

रज्जब घर घरणी तजे,
पर-धरणी न सुहाय ।
अहि तज अपनी केंचुरी,
किसकी पहिरे जाय ॥

रज्जब जी का ऐसा दृढ़ निश्चय देख कर दोनों ही पक्षों ने रज्जबजी के छोटे भाई के साथ उस कन्या का विवाह करा दिया और २० वर्ष की अल्पायु में ही वे दादूजी के शिष्य हो गए। रज्जब ने यह सोचकर कि जिस भेष में मैंने परम गुरु तथा परम तत्व पाया है उसका त्याग मुझे कभी नहीं करना चाहिए अतः रज्जबजी जीवन भर दूल्हा ही बने रहे।

सच्चे गुरु के शब्दों का ऐसा ही प्रभाव होता है। एक शब्द में ही वह डूबते हुए शिष्य को बचा सकता है। महात्मा राम चरण महाराज ने ठीक ही कहा है—

दादू जैसा गुरु मिलै,
शिष रज्जब सा जाँण ।
एक शब्द में उद्धरा,
रही न खैंचा ताँण ॥
रज्जब को दादू दिया,
एक शब्द में ज्ञान ।
राम चरण सब छाँड़ि के,
हो गया ब्रह्म समान ॥

रज्जबजी जीवन भर सदैव सत्संग और ईश्वर भजन में लीन रहते थे। उनकी गुरु-भक्ति अनुकरणीय थी। उन्हें कीर्तन शास्त्र-श्रवण में अति प्रेम था। वे जहाँ कहीं भी

कथा होती थी अवश्य जाते थे और सुनी कथा को अपने शब्दों में लोगों को सुनाया करते थे। वे सदैव दादूजी के साथ रहते थे। उनके मुख से निकली हुई वाणी को शीघ्र याद कर लिया करते थे। ५-६ वर्ष के निरन्तर प्रयास से रज्जबजी बड़े योग्य हो गए। पद्य रचना भी करने लगे। अनेक दृष्टान्तों को देने तथा कथा सुनने-सुनाने में बड़ा प्रेम था।

एक बार रज्जबजी एक पंडितजी के यहाँ कथा सुनने गये। वह पंडित जी बड़े सुन्दर दृष्टान्त देकर कथा कहते थे। इस प्रकार की योग्यता अपने में न पाकर रज्जबजी बड़े उदास मुख गुरु जी के पास आए। दयालु हृदय गुरु दादूजी ने तुरन्तु ही उदासी का कारण पूछा। उन्होंने तुरन्त ही हाथ जोड़ कर निवेदन किया मैं आज जिन पंडित की कथा सुनकर आया हूं उनके समान दृष्टान्त देने की योग्यता मुझे अभी प्राप्त नहीं हुई है। अपने शिष्य की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए दादूजी महाराज ने रज्जबजी को वरदान दिया कि तुम को इस विषय में उससे भी अच्छी योग्यता प्राप्त हो जाएगी।

तब से रज्जबजी इस कला में बड़े निपुण होगए। वह जहाँ कहीं भी कथा कहते थे दृष्टान्तों के कारण उनकी कथा सर्व प्रिय होती थी। दृष्टान्तों के ही कारण सन्त साहित्य में 'रज्जब वाणी' की समता करने वाला अन्य कोई ग्रन्थ ज्ञात नहीं होता।

श्री गुरुदेव दादूजी महाराज के ही वरदान स्वरूप रज्जबजी की सदैव विजय होती थी। कहा जाता है कि एक बार दुरसा आढ़ा नामक चारण रज्जबजी के पास आया जिसने कि अपनी कवित्व शक्ति के फलस्वरूप अकबर से लाख पसाव तथा जहाँगीर से विजय पदक प्राप्त किया था। उसने एक स्वर्ण का अंकुश बना रखा था। उसका प्रण था कि जो उससे शास्त्रार्थ में हार जायगा उसे अपनी पालकी का वाहन बनायेगा और जिससे मैं हार जाऊंगा उसे अपना अंकुशादि दे दूँगा। इसी प्रण को लेकर वह रज्जबजी के पास आया और आकर यह दोहा सुनाया—

बावन अक्षर सप्त स्वर,
गल भाषा छत्तीस।
इतने ऊपर जो कथे,
तो जानूँ कवि ईश॥

रज्जबजी ने उत्तर दिया—

बावन अक्षर सप्त स्वर,
गल भाषा छत्तीस।
इतने ऊपर गुर भजन,
अन अक्षर जगदीश॥

इतना सुनकर दूरसा ने रज्जबजी को अपना गुरू बना लिया और उनने सत्संग से लाभ उठाया। ऐसा होता है गुरुदेव का वरदान।

रज्जबजी में गुरु भक्ति अपार थी। एक समय की बात है श्री दादूजी महाराज अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक पानी का नाला पड़ा। उसमें पानी थोड़ा तथा कीचड़ अधिक। सबके

पैरों को गन्दा होने से बचाने के लिए गुरुदेव ने कहा कि जाओ कहीं से पत्थर के टुकड़े एकत्रित करके इस कीचड़ में थोड़ी-थोड़ी दूर पर डाल दो जिससे पैर गन्दे न हों और हम सब लोग इस नाले को पार कर लें। गुरुदेव की आज्ञा सुनकर सभी शिष्य पत्थर एकत्रित करने जहाँ-तहाँ गए। परन्तु देखते क्या है कि रज्जब अपने पूरे शरीर को कीचड़ में फैला कर लेट गये और बोले-गुरुदेव आप मेरे शरीर के ऊपर चरण रखते हुए पधारिए। पत्थरों की क्या आवश्यकता है। यह शरीर जब ऐसे ही समय पर काम न आया तो इसका क्या बनेगा। यह देख कर अन्य शिष्य भी रज्जबजी से बड़े प्रभावित हुए तथा दादूजी महाराज ने तो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। ऐसी थी रज्जबजी की गुरु-भक्ति।

नारायणा नगर में भी दादूजी के एक शिष्य रहते थे। जिनका नाम था बखानजी। उन्होंने एक बार रज्जबजी को उनकी मंडली सहित भोजन का निमन्त्रण दिया। जब वह भोजन कर चले गए तो उनकी पत्नी ने उनसे पूछा कि भगवन! आप भी दादूजी महाराज के शिष्य हैं और रज्जबजी भी। परन्तु फिर भी आपका प्रभाव उनके सामने कुछ भी दिखाई नहीं देता ऐसी क्या बात है? तब बखानजी ने उत्तर दिया कि—

जन रज्जब को संपदा,
गुरु दादू दीन्ही आप।
बखना के टोटा नहीं,
तेरे चरणों का सुप्रताप॥

अर्थात दादूजी महाराज ने स्वयं रज्जबजी को जो ज्ञान संपदा प्रदान की है वही मुझ को भी की है। ज्ञान संपदा की कमी मुझ में भी नहीं हैं। यदि कमी है तो यही है कि मैं गृहस्थ हूं और वे विरक्त हैं। इस कमी का कारण तेरे चरणों का प्रताप है। यदि तू नहीं होती तो मेरी भी रज्जबजी के समान ही प्रतिष्ठा हो सकती थी। यह सुनकर बेचारी पत्नी चुप हो रही।

इतना ही नहीं रज्जबजी की गुरुभक्ति यहां तो चरम-सीमा पर ही पहुंच गई है। देखिए—

दादूजी महाराज के ब्रह्मलीन होने पर रज्जबजी ने भी अपने नेत्र बन्द कर लिए। खोल कर ही नहीं देखते थे। अन्य सन्त यदि कहते भी थे कि भगवान ने नेत्र तो देखने के लिए ही दिए हैं अतः देखने में क्या हानि है? परन्तु रज्जबजी यही जवाब देते कि अब संसार में नेत्र खोल कर देखने के लिए कुछ भी नहीं है। श्री गुरुदेव महाराज का शरीर अवश्य देखने योग्य था किन्तु अब वह पृथ्वी पर रहा नहीं है। अब और कुछ संसार में देखने की मेरी कुछ भी इच्छा नहीं है।

रज्जबजी के भी अनेक शिष्य थे। इनकी शिष्य-परम्परा आज भी चल रही है। श्री रज्जब जी भी ब्रह्म-चिन्तन और सत्संग में अवश्य रहते थे परन्तु फिर भी लोक-कल्याण के लिए साहित्य की रचना करना नहीं भूले थे। वे दादूजी के इन वचनों को नहीं भूले थे—

"हरि भज साफिल जीवना,
परोपकार समाय।
दादू मरणा तँह भला,
जहँ पशु पक्षी खाय॥"

इन्हीं शब्दों का अनुकरण करते हुए श्री रज्जब जी १२२ वर्ष की अवस्था में अपने शिष्य रामदास को लेकर टोंक की ओर चले गये। वन के आने पर रामदास को पीछे भेज दिया और स्वयं निर्जन स्थान पर नाशवान शरीर को त्याग कर ब्रह्मलीन हो गए। और सभी सांसारिक बन्धना से मुक्त हो गए।

इधर उनके बाल कवि श्री सुन्दरदास जी रज्जब जी से मिलने के लिए सांगानेर आए। परन्तु आने पर उन्होंने और ही कुछ सुना। अपने गुरु रज्जब जी का संसार त्याग और उनके बिना अपना संसार में जीवित रहना व सहन नहीं कर सके। अतः वे भी अपने शरीर को त्याग कर सांगानेर में ही ब्रह्म-लीन हो गए।

इस प्रकार दोनों ही सन्त सब संसार का उपकार करते हुऐ स्वयं सांसारिक बन्धनों के मुक्त होते हुए ब्रह्मलीन हो गए। दादूजी का स्थूल शरीर इस संसार में नहीं है फिर भी उनका अक्षर शरीर कितने साधु सन्तो का मार्ग दर्शन करता है। धन्य हैं ऐसे सन्त जिन्होंने गुरुदेव के चरणों में आत्म समर्पण कर जीवन के अमृत को प्राप्त किया। सच है जिन्होंने आत्म-समर्पण श्रद्धा एवं निष्ठा का अवलम्बन ले लिया उनके लिए फिर कौन सी चीज दुर्लभ रह सकती है। शास्त्रार्थ तर्क तथा वितंडावाद से क्या कुछ हाथ लग सकता है। कुछ पाना है तो गहरे पानी में गोता लगाना पड़ेगा। डूबने के डर से यदि किनारे पर बैठे रह गए तो "कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय" के सिवाय और कुछ हाथ नहीं लगेगा।

परम प्रिय भक्त

जिसमें विषम भाव नाम को भी नहीं होता – जो दीपक की तरह ही रहकर कभी यह विचार अपने मन में नहीं लाता कि मैं अपने घर के लोगों के लिए तो प्रकाश करूँगा और बाहर वालों के लिए अंधेरा ही करूँगा, वह मेरा परम प्रिय भक्त होता है। जो बस्ती में और निर्जन वन में भी समान रूप से विचरण करता है, मैं ऐसे भक्त को शिर पर धारण करता हूं।

—सन्त ज्ञानेश्वर

युञ्जन योगी

श्रीमद्भगवद्गीता में त्रिलोकीनाथ अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण ने 'युञ्जन योगी' और 'युक्त योगी' के भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्षण लिखे हैं। युक्त योगी का क्या स्वरूप है यह इससे पिछले अंक में जगदात्मा के वचनामृत के आधार पर एक लेख में समझा दिया गया है। युञ्जन योगी का स्वरूप भी स्वयं योग-योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से स्वयं गीता में किया है। उसको पढ़ कर हर साधक को यह ज्ञान होना चाहिये कि एक युञ्जन योगी का क्या कर्त्तव्य है उसका अपनी दिन-चर्य्या और रात्रि-चर्य्या किस प्रकार की बनानी चाहिये, किस प्रकार के वातावरण में अपने आप को रखना चाहिये और किस प्रकार के नियमों का पालन करता हुआ वह सिद्धिको पा सकता है। इसका पूरा-पूरा दिग्दर्शन नीचे के श्लोकों में जगदात्मा श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से बतलाया है। योग के परम लक्ष्य को पाने की इच्छा वाले हर साधक को इन श्लोकों को बार-बार पढ़ना चाहिये और उसमें बताये नियमानुसार अपने नैतिक जीवन-चर्य्या बना लेनी चाहिये:—

योगी युञ्जीत सतत-
मात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा
निराशीरपरिग्रहः॥

योगाभ्यासी को चाहिये कि अपने योगाभ्यास के लिये एकान्त स्थान निश्चित करे और वहाँ योगाभ्यास करे। वह अकेला बैठे सब प्रकार की आशाओं को और लोलुपता को छोड़कर चित्त और इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण करके योगाभ्यास करे।

शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य
स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं
चैलाजिन कुशोत्तरम्॥

किसी पवित्र देश में कुशा मृगछाला आदि के पवित्र आसन को बिछा करके अपने आप को एक आसन से अवस्थित करे। आसन का रूपक ऐसा होना चाहिये जो न बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा हो।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा
यतचित्तेन्द्रिय क्रियः।
उपविश्यासने युञ्जया-
द्योगमात्म विशुद्धये॥

उस आसन पर बैठ करके अपने चित्त और इन्द्रियों पर पूर्ण निग्रह करके अपने आत्म-शुद्धि के लिये योगाभ्यास करे।

समं काय शिरोग्रीवं
धारयन्न चलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं
स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

साधक को चाहिये कि वह अपने अभ्यास में सम काय शिरोग्रीव हो कर बैठे। अर्थात् वह अपने शरीर का स्तर मेरुदंड को सीधा रखकर समस्थिति में रखे और दिशा प्रदिशाओं को न देख कर नासिका के अग्रभाग को देखता रहे। नासिका के अग्रभाग को देखने की यह क्रिया हठयोग से सम्बन्ध रखती है। योगाभ्यासी साधक को चाहिये कि किसी पूर्ण सद्गुरु से शिक्षा प्राप्त करके त्राटक आदि से नेत्र दृष्टि को स्थिर रखने की योग्यता को बढ़ा ले। बिन्दु-त्राटक के अभ्यास से शनैः-शनैः जो नेत्रों के सामने प्रकाश की धारा बन जाती है उस धारा के बन जाने के बाद यदि साधक नासिका के अग्रभाग का अवलोकन करता है तो उसकी दृष्टि भीतर की ओर पलट जाती है, जिसके फलस्वरूप वह साधक भ्रूमध्यावलोकन से बहुत ही सुन्दर दिव्यात्म सम्बन्धी दृश्यों को देखा करता है। शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ जाने के बाद वह मूर्धा ज्योति को देखने लगता है। भगवान पतंजलिदेव ने कहा है, 'मूर्धज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्' अर्थात् मूर्धा ज्योति में संयम करने से सिद्धों के दर्शन होते हैं। किन्तु यह विद्या अनुभवी गुरु के द्वारा ही प्राप्त करनी चाहिये। अन्यथा साधारण लेख पढ़करके जो लोग मनमाने अभ्यास करना आरंभ कर देते हैं कभी-कभी उनके सामने शुभ परिणाम के अतिरिक्त दुष्परिणाम सामने आता है। इसलिये इस प्रकारकी प्रत्येक साधनाको अनुभवी शिक्षक के द्वारा ही प्राप्त करना चाहिये।

प्रशान्तात्मा विगत भी-
र्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो
युक्त आसीत मत्परः ॥

योगी को चाहिये कि वह पूर्ण रूपेण ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित होकर एवं अपने आपको शान्त स्थिति में रखता हुआ निर्भयता के साथ सब प्रकार से मन पर नियंत्रण करके मत्परायण होकर योगाभ्यास करे।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं
योगी नियत मानसः।
शान्ति निर्वाणपरमां
मत्संस्थामधिगच्छति ॥

इस प्रकार मन पर नियंत्रण करके एकान्तिक अभ्यास करनेवाला योगी निर्वाण परम शान्ति और मेरी सहायता को पा जाता है।

योगाभ्यासी के लिए कुछ नियम

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति
न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य
जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

योगाभ्यासी को चाहिये कि वह अति मात्रा में भोजन न करे जो ज्यादा भोजन भरपेट खाते हैं उन्हें योग सफल नहीं होता। और भूखे रहना भी योग के विरुद्ध है। जो बहुत सोते हैं या जो बिल्कुल नहीं सोते उनको भी योग सफल नहीं होता।

युक्ताहार विहारस्य,
युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य,
योगो भवति दुःखहा॥

जो लोग ठीक खाते हैं और अपनी दैनिक क्रियाओं को ठीक रखते हैं, ठीक समय पर सो जाते हैं व ठीक समय पर उठ जाते हैं उनका किया हुआ योगाभ्यास दुःख का नाश करके सुख को देने वाला होता है।

यदा विनियतं चित्त-
मात्मन्येवावतिष्ठते।
निः स्पृहः सर्व कामेभ्यो,
युक्त इत्युच्यते तदा॥

जिस समय योगी का नियंत्रित किया हुआ चित्त अपने आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाता है और वह साधक सब प्रकार की कामनाओं से रहित हो जाता है तब वह युञ्जन योगी की सीमा से निकल कर युक्तता को प्राप्त हो जाता है।

समाधिस्थ साधक की स्थिति -

यथा दीपो निवातस्थो
नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य
युञ्जतो योगमात्मनः॥

जो व्यक्ति यतचित्त होकर के योगाभ्यास करता है उसका चित्त निर्वात स्थान में रक्खे दीपक की लौ की भाँति एकाग्र हो जाता है और वह शनैः-शनैः युक्तता को प्राप्त हो जाता है।

इसलिये साधक को चाहिये कि जगदात्मा श्रीकृष्ण के कथनानुसार ऊपर लिखे हुए नियमों का पालन करते हुए योगाभ्यास करे और अपनी आत्म-स्थिति को बढ़ाये। उपरोक्त नियमों के अनुसार अभ्यास करने वाला साधक अल्पायु-काल में ही युक्तता को प्राप्त हो जाता है।

—×०×—

दुराग्रह न कीजिए

हममें किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं होना चाहिए, क्योंकि दुराग्रह प्रेम का विरोधी है। हम जितने ही शान्तचित्त होंगे और हमारे स्नायु जितने शान्त रहेंगे हम उतने ही अधिक प्रेम-सम्पन्न होंगे और हमारा कार्य्य भी उतना ही अधिक उत्तम होगा।

—स्वामी विवेकानन्द

सिद्ध-सिद्धि और समाधि-भाषा

[डा० रमेशचन्द्र मिश्र, रामलाल आनन्द कॉलिज, धौलाकुआं, नई दिल्ली-२३]

—×०×—

'सिध्' धातु से 'क्त' प्रत्यय द्वारा 'सिद्ध' शब्द निष्पन्न है। इसके अनेकों अर्थों में अलौकिक शक्ति से युक्त, 'पुण्यात्मा', 'दिव्य', 'अविनश्वर', 'नित्य', 'पर्वतशृंगों पर तपस्या करने वाला', 'अन्तर्दृष्टि प्राप्त ऋषि', 'पूर्णकाम' अर्थ उपलब्ध होते हैं। 'कोष्ठी-प्रदीप' ग्रन्थ में सिद्ध के लक्षण दिए हैं —

जितेन्द्रिय सर्वकला निधानो,
गौरोति शूरो मधुरो विनीतः।
सत्योपपन्नः कृतभूरि भोगो,
यस्य प्रसूतौ किल सिद्ध योगः॥'

अर्थात् 'जितेन्द्रिय, सर्वकला विशेषज्ञ, गौर वर्ण, शूरवीर, मृदुभाषी, विनम्र, सत्यनिष्ठ, भोगोपरि योगी पुरुष सिद्ध होता है।, तन्त्रसार ग्रन्थ में मन्त्र जाप को 'सिद्ध' होने का मूल कारण बताया है —

'सम्यग् अनुष्ठितो मन्त्रो,
यदि सिद्धो न जायते।
पुनस्तेनैव कर्त्तव्यस्ततः,
सिद्धो भवेद ध्रुवम्॥'

महाभारत (आदि पर्व ७०।१५), रामायण (२।९८।८), श्री मद्भागवत (६।१२।१९) तथा १०।१८।१६) आदि सगुणोपासक ग्रन्थों में 'सिद्ध' शब्द का प्रयोग उपरिलिखित अर्थों में हुआ है। हठयोग-साधना या व्रज्रयान-साधना में निष्णात, अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न, अणिमादि अष्ट-सिद्धियों को प्राप्त साधक 'सिद्ध' संज्ञाको प्राप्त होते हैं। भारतीय शास्त्र, परम्परा में सिद्धों की अनेक अनुश्रुतियां उपलब्ध होती हैं। किन्तु इस लेख में—सिद्ध कौन है? सिद्ध की सामर्थ्य क्या है? सिद्धि की व्याप्ति कितनी है? इन व्याख्यात्मक प्रश्नों का समाधान मेरा अभिधीत नहीं है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सिद्धों की संख्या, सिद्धियों की संख्या तथा सिद्धों द्वारा प्रयुक्त सांकेतिक भाषा के कुछ नमूने प्रस्तुत करना है।

हिन्दी-साहित्य की पृष्ठ भूमि में अपभ्रंश साहित्य विद्यमान है और अपभ्रंश एवं पुरानी हिन्दी में 'चौरासी सिद्धों' तथा 'नवनाथों' की परम्परा प्रसिद्ध है। यद्यपि 'चौरासी' का सांकेतिक अर्थ अधिक है। बारह राशियों तथा सात नक्षत्रों का गुणनफल हो सकता है। पूरे चौरासी नाम किसी भी सम्प्रदाय सूची में नहीं हैं। हां, कुछ सिद्धों के नाम ऐसे अवश्य हैं जो सब सूचिओं में मिलते हैं। साहित्य में 'सिद्ध' शब्द बौद्ध सिद्धाचार्यों के लिए ही अधिक

प्रयुक्त हुआ है। ये सहज यानी सिद्ध भारत के पूर्वी भाग में तान्त्रिक साधनाएँ सम्पन्न करके प्रज्ञोपण्यात्मक युगनद्ध प्रक्रिया द्वारा 'महासुख' की प्राप्ति में निरत थे। इनकी एक सूची महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने वि० सं० १९८९ के 'गंगा पुरातत्वांक' के पौष-माघ (पृ० २२१ २२४) के अंक में दी है। इसमें चौरासी सिद्धों के नाम मिलते हैं —

[१] लूहिया [२] लीलापा [३] विरूपा [४] डोम्भीपा [५] शबरीपा [६] सरहपा [७] कंकालीपा [८] मीनपा [९] गोरक्षण [१०] चौरंगीपा [११] वीणापा [१२] शान्तिपा [१३] तन्तिपा [१४] चमरिपा [१५] खड्गपा [१६] नागार्जुन (१७) कण्हपा (१८) कर्णरिपा (१९) थगनपा (२०) नारीपा (२१) शालिपा (२२) तिलोपा (२३) छत्रपा (२४) भद्रपा (२५) दोखंधिपा (द्विखंडिपा) (२६) अजोगिया [२७] कालपा [२८] धोम्भिपा [२९] कंकणपा [३०] कमरिपा [कंबलपा] [३१] डेंगिपा [३२] भदेपा [३३] तंधेपा [तंतिपा] [३४] कुकुरिपा [३५] कुछिपा [३६] धर्मपा [३७] महीपा [३८] अचिन्तिपा [३९] भलहपा [४०] नलिनपा [४१] भुसुकपा [४२] इन्द्रभूति [४३] मेकोपा [४४] कुड़ालिपा [४५] कम्भरिपा [४६] जालंधरपा [४७] राहुलपा [४८] धर्मरिपा [४९] धोकरिपा [५०] मेदनीपा [५१] पंकजपा [५२] घंटापा [५३] जोगीपा [५४] चेलुकपा [५५] गुंडरिपा [५६] लुचिकपा [५७] निर्गुणपा [५८] जयानन्त [५९] चर्पटीपा [६०] चम्पकपा [६१] भिखनपा [६२] भलिपा [६३] चवरिपा [६४] अजपालिपा [६५] मणिभद्रा [योगिनी] [६६] मेखलपा [योगिनी] [६७] कनखलापा [योगिन] [६८] कलकलपा [६९] कान्तालीं (कन्थाली) पा (७०) धहुलिपा (७१) उधनिपा [७२] कपालपा [७३] किलपा [७४] सागर पा [७५] सर्वभक्षपा [६८] नागबोधिपा [७७] दारिकपा [७८] पुतुलिपा [७९] पहनपा [८०] कोकालिपा [८१] अनंगपा [८२] लक्ष्मीकरा [८३] ससुदपा [८४] भालि-[व्यालि] पा।

उक्त सूची में संख्या ३० और संख्या ४५ में कमरिपा नाम के ही दो रूप मिलते है। प्रत्येक सिद्ध के नाम के आगे 'पा' आदरार्थक 'पाद' का अपभ्रंश रूप है। दूसरी सूची नाथ सिद्धो की है। यह सूची 'वर्णरत्नाकर' (ग्रन्थकार कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर है) ये मिथिला के राजा हरिसिंहदेव (सन् १३००-१३२१) के सभासद थे) में दी है। इस में लेखक ने नाथ-सिद्धों की संख्या चौरासी बताई हैं, किन्तु नाम कुल पचहत्तर सिद्धों के ही हैं, क्योंकि भद्र नाम दो स्थानों पर आया है—

(१) मीनानाथ (२) गोरक्षनाथ (३) चौरंगी नाथ (४) चामरी नाथ (५) तंतिया (६) हालिपा (७) केदारिया (८) घोंगपा (९) दारिया (१०) विरूपा (११) कपाली (१२ कमारी (१३) कान्ह (१४) कनखल (१५) मेखल (१६) उन्मन (१७) कापडलि (१८) घोवी (१९) जालंधर (२०) टोंगी (२१) मवह (२२) नागार्जुन (२३) दौली

(२७) मिपाल (२५) अचिति (२६) चम्पक (२७) डेण्टस (२८) भुम्बरी (२९) बाकलि (३०) तुजी (३१) चर्पटी (३२) भादे (३३) चाँदन (३४) कामरी (३५) करवत (३६) धर्म पापतंग (३७) भद्र (३८) पासलिभद्र (३९) पलिहिह (४०) भानु (४१) मीन (४२) निर्दय (४३) सबर (४४) भर्तृहरि (४५) भीषण (४६) भटी (४७) गगनपा (४८) गमार (४९) मेनुरा (५०) कुमारी (५१) जीवन (५२) अघोसाधव (५३) गिरिवर (५४) सियारी (५५) नागवालि (५६) विभवत् (५७) सारंग (५८) विविकिधज (५९) मगरधज (६०) अचित (६१) विचित (६२) (६३) चाटल (६४) नाचन (६५) भीलो (६६) पाहिल (६७) पासल (६८) कमलकंगारि (६९) चिपिल (७०) गोविंद (७१) भीम (७२) भैरव (७३) भद्र (७४) भमरी (७५) मुरुकुटी।

इस सूची में अनेक नाम उच्चारण-भेद से दूसरे जैसे लगते है और बहुत-से प्रथम सूची से भी साम्य रखते है। सहजयानी-सिद्ध तिब्बती परम्परा में बौद्ध-साधना के अन्तर्गत युग नद्धसिद्धि के द्वारा 'महा सुख' की उपलब्धि में निरत रहते थे। उसमें वामाचार को साधन बनाया जाता था। जब कि नाथ-सिद्धों में आदिनाथ शिव को आधार मानकर हठयोग-साधना को समाधि-सिद्धि का साधन माना जाता था। दोनों सिद्ध-परम्परायें गुरु को महत्त्व देती हैं। अथर्ववेद, तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा महाभारत में नाथ' शब्द का अर्थ रक्षक, शरणदाता, स्वामी, पति के रूप में उपलब्ध होता है। किन्तु नाथ-सम्प्रदाय में यह शब्द शिव के लिए प्रयुक्त हुआ है। राजगुह्य तन्त्र में लिखा है :—

'नाकारोऽनादि रूपं
थकारः स्थाप्यते सदा।
भुवनत्रयमेवैकः
श्री गोरक्ष नमोऽस्तुते॥'

अर्थात्—'ना' का अर्थ अनादि रूप है और 'थ' का अर्थ अथ अर्थात्—भुवनत्रय का स्थापित होना। इस प्रकार नाथ-सम्प्रदाय भुवनत्रय की स्थिति का कारण हुआ। इसलिए गोरक्ष का 'नाथ' संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इसी प्रकार 'शक्ति संगम तन्त्र' में लिखा है :—

'श्री मोक्षदान दक्षत्वात्
नाथ ब्रह्मानुबोधनात्।
स्थगिताज्ञान विभवात्
श्री नाथ इतिगीयते॥'

अर्थात 'नाथ' शब्द ब्रह्म बोधनार्थ है, उसका ज्ञान कराने वाला तथा 'थ' का अर्थ अज्ञान की सीमा को स्थगित कराने वाला 'नाथ' है। 'नाथ' की शरण से ही नाथ—ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। 'हठयोग प्रदीपिका' के प्रमाण से भी अनेक सिद्ध-योगियों के नाम मिलते है। ये सिद्ध-योगी काल की सीमा का अतिक्रमण करके ब्रह्मांड में चिरंजीवी होकर जीते हैं। ये नाम हैं :—

'श्री आदिनाथमत्स्येन्द्र
शाबरानन्द भैरवाः ।
चौरंगी मीन गोरक्ष
विरूपाक्ष बिलेशयाः ॥

मंथानो भैरवो योगी
सिद्धिर्बुद्धश्च कंथडिः ।
कोरंटकः सुरानन्दः
सिद्धिपादश्च चर्पटिः ॥

कानेरी पूज्यपादश्च
नित्यनाथो निरंजनः ।
कपाली बिंदु नाथश्च
काकचंडीश्वराह्वयः ॥

अल्लामः प्रभुदेवश्च
घोडाचोली च टिंटिणिः ।
भानुकी नारदेवश्च
खंडः कायालिकस्तथा ॥

इत्यादयो महासिद्धा
हठयोग प्रभावतः ।
खंडयित्वा कालदंडं
ब्रह्मांडे विचरंति ते ॥'

– हठयोग प्रदीपिका १ । ५–९

अर्थात् ये नाथ हैं– [१] आदि नाथ [२] मत्स्येन्द्रनाथ [३] सारदानंद [४] भैरव नाथ [५] चौरंगी नाथ [६] मीन नाथ [७] गोरक्ष नाथ [८] विरूपाक्ष [९] बिलेशय [१०] मंथान भैरव [११] सिद्धबोध [१२] कन्हड़ी नाथ [१३] कोरंटक नाथ [१४] सुरानंद [१५] सिद्धपाद [१६] चर्पटीनाथ [१७] कानेरीनाथ [१८] पूज्यपाद [१९] नित्यनाथ (२०) निरंजननाथ (२१) कापालिनाथ [२२] विदुनाथ (२३) काकचण्डीश्वर (२४) मयनाथ (२५) अक्षयनाथ [२६] प्रभुदेव [२७] घोड़ाचूली नाथ [२८] टिण्पिणीनाथ [२९] भल्लरीनाथ [३०] नागबोध [३१] खण्डकापालिक ।

नाथ–सम्प्रदाय में नव नाथों की परम्परा प्रसिद्ध है । गोरक्ष 'सिद्धान्त संग्रह' में मार्ग प्रवर्तक इन नौ नाथों के नाम आये है— १. नागार्जुन २. जडभरत ३. हरिश्चन्द्र ४. पत्य नाथ ५. भीमनाथ ६. गोरक्ष नाथ ७. चर्पट नाथ ८. जलंधरनाथ ९. मलयार्जुन । इन में गोरक्ष, नागार्जुन, चर्पट और जलंधर चौरासी सिद्धों की परम्परा में भी हैं । 'महार्णव तन्त्र' में नव नाथों के नाम इस प्रकार हैं —

१. गोरक्षनाथ २. जालंधरनाथ ३. नागार्जुन ४. सहसार्जुन ५. दत्तोत्रेय ६. देवदत्त ७. जड़ भरत ८. आदिनाथ ९. मत्स्येन्द्र नाथ । 'योग-सम्प्रदायाविष्कृति' के अनुसार परमगुरु आदि नाथ के आश्रित मत्स्येन्द्रनाथ आदि जालंधर नाथ की शिष्य परम्परा इस प्रकार है —

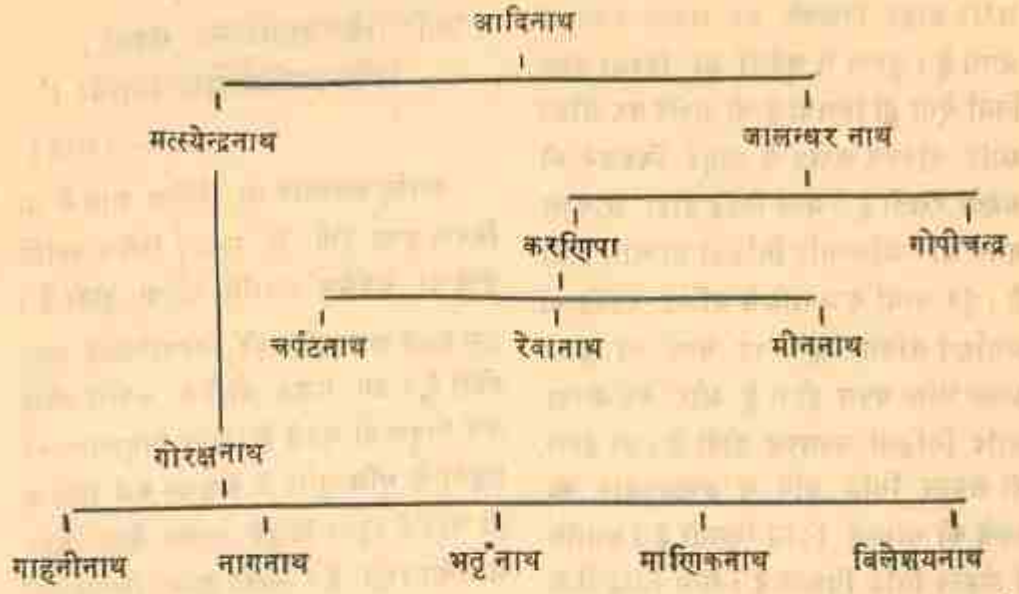

इस प्रकार बौद्ध-सिद्धों की परम्परा ई० सन् की आठवीं सदी से लेकर ग्यारहवीं सदी तक चलती है और नाथ-सिद्धों की १० वीं सदी तक अखण्ड रूप से चलती है। (यद्यपि गोरखनाथ का समय कुछ विद्वान् आठवीं सदी और शंकराचार्य का समकालीन मानते हैं) आदि सिद्ध कौन था ? इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ परम्पराओं में 'लुइपा' को प्रथम सिद्ध माना गया है और कुछ में 'सरहपाद' को। इन सिद्धों के साधना स्थल सिद्ध पीठ कहलाते थे। खेद का विषय है कि इन सभी सिद्ध-नाथों के साधनानुभवों का साहित्य उपलब्ध नहीं होता। उपलब्ध साहित्य में भी प्रामाणिकता का संशय बना रहा है। कुछ नाथ-सिद्धों की कहानियों में भाषात्मक प्रवृत्ति १६ वीं-१७ वीं सदी तक की मिलती है, यद्यपि उनके नाम प्राचीन हैं।

अब हम 'सिद्ध' पर विचार करते हैं, तो हमारे सामने योगदर्शन की परम सिद्धि और तप, मन्त्रजाप, देवता-योगिनी-भैरव आदि को सिद्ध करनेके पश्चात् अति प्राकृतिक शक्ति या चमत्कार प्रदर्शन-दक्षता रूप सिद्धि दोनो ही आती हैं। महाराज पतञ्जलि ने कैवल्य पाद के प्रारम्भ में सूत्र में पाँच सिद्धियों का उल्लेख किया है—

'जन्मौषधि मन्त्र तपः समाधिजाःसिद्धयः।'

अर्थात् सिद्धियाँ जन्म, औषधि, मंत्र, तप, और समाधि इन पाँच उपायों से उत्पन्न होती हैं। देहान्तर ग्रहण काल में किसी किसी को जन्म के साथ ही पूर्व जन्म के संस्कारों के साथ ही सिद्धि मिल जाती है। औषधियों द्वारा भी 'वनौषधि क्रिया काल मन्त्र क्षेत्रादि साधनात्।' सिद्धि प्रादुर्भूत होती है। क्लोरोफार्म आदि रसायन सूंघने या सेवन से किसी को

शरीर बाहर निकलने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। यूरोप में चुड़ैलों की किस्सा कहानियाँ ऐसी ही मिलती हैं जो शरीर पर औषध आदि पोतकर शरीर से बाहर निकलने की क्षमता रखती है। मन्त्र सिद्धि द्वारा आकाश गमन और अणिमादि सिद्धियों का लाभ होता है। पूर्व जन्मों के जपादि से अर्जित, प्रकृति का कर्माशय संचित रहने पर मन्त्र जप द्वारा इच्छा शक्ति प्रबल होती है और वशीकरण आदि सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। तप द्वारा भी संकल्प सिद्धि होने से इच्छानुसार जा सकने की सामर्थ्य सिद्धि मिलती है। समाधि से कैवल्य सिद्धि मिलती है। अन्य सिद्धियों से लोक प्रतिष्ठा चाहे जितनी मिल जाय किन्तु कैवल्य प्राप्ति में बाधक ही होती है। समाधि से समस्त भावी कर्म भुने हुए चने के समान दग्ध बीज होकर निर्बीज और निष्फल हो जाते हैं। उनसे कर्म से कर्म के जन्मने का सिद्धान्त समाप्त हो जाता है। कुछ प्रारब्ध कर्म रहते हैं उनको योगी इसी जन्म में भुगतान कर देते हैं। इस भुगतान में उन्हें कभी कभी, प्रारब्ध कर्म को शीघ्र भोगने के लिये योग बल से अनेक स्व - शरीरों का निर्माण कराना होता है। फिर बुद्धि का आत्म पार्थक्य सम्बन्ध विवेक से वे कैवल्य की ओर ही उन्मुख होते हैं। यहाँ तक कि परम अभिलषित 'विवेक ख्याति' से भी विरत हो जाते हैं। उनकी वह दशा 'धर्ममेघ' समाधि को होती है। 'धर्ममेघ' समाधि के सम्बन्ध में सूत्रकार ने लिखा है—

'प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा,
विवेकख्यातेर्धर्ममेघस्समाधिः।'

— (४।२९)

अर्थात् प्रसंख्यान या विवेक ज्ञान में भी विराग युक्त होने से सर्वथा विवेक ख्याति होने पर 'धर्ममेघ' समाधि उत्पन्न होती है। उस समय आत्मदर्शन की निरवच्छिन्न दशा होती है। उस समय योगी के समस्त क्लेश कर्म निवृत्त हो चुकते हैं। और त्रिगुणात्मिका प्रकृति के भुक्ति-मुक्ति के कर्त्तव्य कर्म समाप्त हो जाते है। पुरुष विशुद्ध स्वरूप केवल भाव में स्थित रहता है। उसका सूक्ष्म 'लिंगशरीर' भी तद्-तद् उपादानों में विलीन हो जाता है। यही योग का परम प्रतिपाद्य है और परम-सिद्धि है। अज्ञान रहते हुए मृत्यु के समय 'लिंग-शरीर' के साथ विकारी अठारह तत्त्व संक्रमण करते रहते हैं। ये पुष्प में गंध या कंथा में रंग के समान लगे रहते हैं। (इसका विवेचन गुरु-कृपा से कहीं अन्यत्र कर पाऊंगा।)

उक्त समाधिजा सिद्धि के अतिरिक्त अन्य सिद्धियों का भी उल्लेख मिलता है। बौद्ध परम्परा में सामान्य तथा उत्तम दो प्रकार की सिद्धियों का उल्लेख है। अन्तर्धान होना रूप परिवर्तन आदि सामान्य सिद्धियाँ गिनाई हैं। प्रज्ञोपाय समाधि से 'महासुख' प्राप्ति रूप सिद्धियाँ उत्तम कही है। बौद्ध तन्त्रों में अष्ट महासिद्धियों के नाम ये हैं — खड्ग, अंजन, पादलेप, अन्तर्धान, रसरसायन, खेचर

भूचर, पाताल। किन्तु ये सभी लौकिक सिद्धियाँ हैं। लोकोत्तर सिद्धियों में अनुत्तर सिद्धि, महामुद्रा सिद्धि, महामुख सिद्धि बताई गई हैं। 'ब्रह्म वैवर्त पुराण' में सर्वज्ञत्व, दूर श्रवण, आदि चौंतीस सिद्धियों का नामोल्लेख है। 'हठयोग प्रदीपिका' में अभ्यास से सिद्धि प्राप्ति का उल्लेख है, सिद्धियों की संख्या नहीं गिनाई हां अमरोली, वज्रोली, उन्मनि आदि मुद्राओं को सिद्ध करने सम्बन्धी सिद्धियों का वर्णन है। इनकी साधना हर अवस्था का व्यक्ति कर सकता है।

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा
व्याधितो दुर्बलोऽपि वा।
अभ्यासा सिद्धिमाप्नोति
सर्वं योगेष्वतंद्रितः॥
—१।६४

गोरख बानी में एक स्थान पर चौबीस सिद्धियों का उल्लेख है, जिनमें कुछ तो अष्ट सिद्धियों के नाम ही हैं, शेष उन्हीं का विस्तार है। वे नाम इस प्रकार हैं—

[१] अनूमां सिधि, [२] महिमां सिधि, [३] गरीमां सिधि [४] लघूमां सिधि [५] प्रापति सिधि [६] प्रकासक सिधि [७] असस्या सिधि [८] आवस्या सिधि [९] मनोजा सिधि [१०] छह मुक्ता सिधि [११] अनूरा सिधि [१२] परकाया प्रवेस सिधि [१३] सूरज बसि सिधि [१४] जल बसि सिधि [१५] [१६] दूरि दरसण सिधि [१७] कांस का मोद सिधि [१८] अप्रहता सिधि [१९] देवता सैल सिधि [२०] रूप सेल सिधि [२१] हारे नाहीं सिधि [२२] त्रिकाल सिधि [२३] अर्गल बसि सिधि [२४] सबद बसि सिधि। गोरख नाम ने इन सिद्धियों को ब्रह्म ज्ञान में बाधक माना है 'यती चौबीस सिधि ब्रह्मज्ञानी कै आड़ी आवै। यही चौबीस सिधि-सिधि आई होय तौ सतगरू प्रसाद तें त्यागै। सोई जोगेश्वर सोई ब्रह्मज्ञानी बल अपार जती गोरखनाथ समझावै। यती चौबीस सिधि त्यागै। सोई परम ज्योति कूं पावै।

(गोरख बानी, पृ० २४=४९)

हठयोग साधना में आठ प्रमुख सिद्धियों का बहुशः उल्लेख हुआ है। ये हैं—

[१] अणिमा [२] लघिमा [३] महिमा [४] प्राप्ति [५] प्राकाम्य, [६] ईशित्व [७] वशित्व [८] कामा वसायित्व। अणिमा सिद्धि में अणु के समान छोटा या अदृश्य हो जाना सिद्ध होजाता है। लघिमा में हल्का होकर ऊपर उठना सिद्ध हो जाता है। महिमा में पर्वत के समान भारी होने की क्षमता सिद्ध हो जाती है। प्राप्ति में कहीं से कोई वस्तु प्राप्त कर लेने की शक्ति प्राप्त हो जाती है प्राकाम्यमें संकल्प और इच्छा शक्ति अबाधित होकर सिद्ध हो जाती है। ईशित्व में सब पदार्थों पर अधिकार जमा लेने की शक्ति मिलती है। वशित्व में सब प्राणियों को वश में करने की शक्ति उपलब्ध होती है। यथा कामावसायिता सिद्धि में साधक के सभी संकल्प पूर्ण हो जाते हैं।

समाधिभाषा का प्रयोग बौद्ध-सिद्धों ने

बहुतायत से किया है, नाथ-सिद्धों की बानियाँ उलटबाँसी शैली में अभिव्यक्त हुई हैं। बौद्ध सिद्धों की बानी चर्यागीतों तथा दूहा छन्दों में संग्रहीत हैं तो नाथ सिद्धो की बानियाँ सबदी, सबद और पदों में संकलित हैं। किन्तु दोनों ही परम्पराओं में साधनाजन्य अनुभवों को संकेत शैली के आश्रय से कहा गया है। बौद्ध और नाथ सिद्ध साधना की रहस्यवादी भाव भूमि को स्वीकारते हैं। अर्थात् साधक शिष्य से साधनानुभव, प्रतीक संकेत तथा कूट विरोधोक्ति के रूप में गुरु साधना के रहस्यों को गुप्त पवित्र तथा सर्व सुलभ न होने देने के लिए, चमत्कारिक ढंग से कहते हैं। इस शैली को समाधि भाषा, सन्ध्या वचन, सन्ध्या भाषा आदि नामोंसे उल्लखित किया है चर्यागीतिक कोश में एक स्थान पर लिखा है—

'वक्षेऽहं वज्रगर्भोऽयं ,
　　शृणु त्वम् एक चेतसा।
सन्ध्याभाषं महाभाषं ,
　　समय संकेत विस्तरं ॥

संध्याभाषा— यथारुतम् अर्थम् अभिप्रेतम् अर्थ च संदधती भाषा।

चर्यागीतों में बौद्ध - सिद्ध साधनात्मक आचरण को विशेष प्रतीक-संकेतों तथा शब्द की सन्धि के द्वारा साम्प्रदायिक अर्थ को गुह्य बनाये रहते थे। इस भाषा शैली को हेवज्र-तन्त्र में 'महासमय' (महान् सिद्धान) कहा है। इस शैली के द्वारा सिद्ध पुरुष परमार्थ तत्त्व का कथन करते थे। जिस में प्रयोक्ता का अर्थ शब्द की सन्धि में प्रच्छिन्न बना रहता था। कुछ आलोचकों ने 'सन्ध्या' का अर्थ प्रकाश और अन्धकार के मध्य वाली स्थिति 'आलो आन्धारी भाषा' के रूप में अभिहित किया है। क्योंकि यह भाषा न तो पूर्णतः गुह्य होती है और न गम्य। डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने इसका अंग्रेजी अनुवाद 'लैंग्वेज ऑफ ट्वाइलाइट' किया है। इस भाषा शैली की प्रकृति मंत्र प्रकृति या संक्षेपण प्रधान सूत्र शली जैसी है जिस प्रकार मन्त्र में प्रत्येक शब्द अक्षर आकृति का सांकेतिक अर्थ होता है। वैसे ही इस शैली में लिखी गई गीतियो में गुह्य और दिव्य अर्थ सन्निहित माना गया है इस शैली के अभिधार्थ में तात्पर्यार्थ या संकेतार्थ निगूढ़ रहता है। सन्ध्या भाषा में लिखित गीतियों या दोहोंमें विरोध जन्य असम्बद्धता रहती तो है किन्तु अनिवार्य तत्त्व के रूप में नहीं। हिन्दी साहित्य में प्रस्तुत सन्तों की उलटबाँसी शैली का पूर्व रूप इस सन्ध्या भाषा शैली में देखने को मिलता। बौद्ध-सिद्ध कुक्करीपा की सन्ध्या भाषा शैली में लिखित एक गीति यहाँ प्रस्तुत है—

'दुलि दुहि पिटा धरण न जाअ।
　　रुखेर तेन्तलि कुम्भीरे खाअ ॥
अङ्गण घरपण सुन भो विआती।
　　कानेट चौरी निल अधरती ॥
सासुरा निंद गेल बहुड़ी जागअ।

कानेट चोरे निल का गइ माग अ ॥
दिवसइ बहुड़ी का उइ डरे भाअ।
राति भइले कामरू जाअ ॥
अइसन चर्या कुक्कुरी पाएँ गाइड़।
कोड़ि माझें एक हिअहिं समाइड़ ॥

—चर्या गीति कोष पृ० ६

अर्थात् 'कच्छपो अपने पृष्ठ भाग से दुही जाती है, परन्तु उसको ग्रहण नहीं किया जाता। कुम्भीर (मगर-मच्छ) के द्वारा वृक्ष की इमली खाई जाती है। अरे, यह विज्ञप्ति सुनो, घर में प्रवेश करो और उस घर में चोरी की वस्तु 'कर्णपीठ' को अर्द्ध रात्रि के समय ले जाओ। श्वसुर के निद्रालीन होने पर बहू जागती रहती है। ऐसी अवस्था में यदि चोर के द्वारा कर्णाभूषण चुरा लिया गया, तो उसको लौटाने के लिए वह किससे प्रार्थना करे। दिन में तो बहू कउए तक के भय से डरती है, किन्तु रात्रि में सम्पूर्ण प्राणियों को कामरूपता प्रदान करती है। यह चर्यागीति कुक्कुरीपाद के द्वारा गाई गई है, पर करोड़ों में से कोई विरला ही इसको समझ पायेगा।'

उक्त चर्या का संकेतार्थ दुलि, पिटा, रूख, तेतलि, आदि कुम्भीर, कानेट, ससुरा, बहुड़ी, दिवस, राति, काडइ कामरू आदि प्रतीकों के पीछे निहित है। प्रयोक्ता इसके द्वारा भव-दशा को बताता है। और इसके द्वारा वह साधक को साधनापथ पर अग्रसर होने तथा परम सुख प्राप्ति की ओर संकेत करता है। तात्पर्य इस प्रकार लग सकता है कच्छपी रूप सहस्रार चक्र का दोहन कर्णमुद्रा द्वारा सम्भव है और उसी से परम सुख की अनुभूति होती है। अवधूति मार्ग से जाने पर साधक का पतन नहीं होता। कुम्भक प्राणायाम के द्वारा ही कायारूप तेन्तलि वृक्ष का संयमन और चित्त का निःस्वभावीकरण सम्भव है। बज्रोपदेश से समरसावस्था की प्राप्ति रूप अवधूतिका गृह में अधिष्ठान करना चाहिए। और कर्णाभूषण रूप सहजानन्द की प्राप्ति (चोरी) करनी चाहिए। साधनावस्था में श्वसुर रूप श्वसन क्रिया योगानिद्रा में लय हो जाती है और अवधूति रूप योगिनी (बहू) रात दिन जागरण करती है। सहजानन्द की प्राप्ति के फलस्वरूप अन्तर्मुखी साधक स्वस्थ चित्त की अनुभूति करता है। अवधूति शुक्र रूप त्रैलोक्य की सृष्टि में कामरूप काल से संत्रस्त रहती है और जब यह अवधूति पंच स्कन्ध आदि से तैमल्य प्राप्त कर लेती है, तो स्वयं भी उसी महासुख चक्र में निर्विकल्प होकर, प्रवेश कर लेती है सिद्धों की इस सांकेतिक वाणी को कोई विरला ही समझ-पाता है।

अनन्य गुरु-भक्त महाराज छत्रसाल

[एक साधक]

महाराज छत्रसाल से युद्ध में पराजित नूरुद्दीन ने आगरे से सैन्य सहायता प्राप्त कर पुनः बुन्देलखण्ड को घेर लिया और दिल्ली से सहायता आने की प्रतीक्षा करने लगा। ऐसे कठिन समय में गुरुचरणानुरागी छत्रसाल सामन्तों के मना करने पर भी झाँसी से-पूना-घोर अरण्य मार्ग-मार्ग में विराट मुगल-वाहिनी की पर्वाह किये बिना एकाकी चले जा रहे थे—श्री गुरुदेव के चरण-कमल के दर्शन की उत्कट अभिलाषा लिये हुये। उन्हें अपने तन, मन, की सुधि नहीं थी, बस एक मात्र गुरुदेव की मनोहर छवि नयनों में समाई हुई थी। वे भाव-निमग्न चले जारहे थे कि 'अल्लाह हो अकबर' के नारे से चौंक पड़े। यवन सैन्य के गुप्तचरों ने सूचना दे दी थी। महाराज छत्रसाल ने सुना-अश्वों की टापें पाषाणों पर निकट होती जा रही है। शत्रु-सैनिकों का शब्द समीप आता जा रहा है। क्या घेर लिये गये वे ?

श्री गुरुदेव की जै, श्री समर्थ की जै ? यह एकाकी कण्ठघोष ही पर्वतों में प्रतिध्वनित होकर शत-सहस्र हो गया। अश्व की गति मन्द हो गई। दाहिने हाथ में नग्न तलवार विद्युत की भाँति चलने लगी। यवन सेना के कोलाहल सहसा शान्त हो गये। अश्वों के टाप सुनायी नहीं पड़ रहे थे। सहसा सन् करता एक तीर श्रवण के समीप से चला गया। शत्रु-सैन्य वृक्ष-लताओं की सघनता का लाभ उठाना चाहती थी।

'गुरुदेव ! मैं तुम्हारे पास आ रहा हूं। क्या मैं आपके दर्शन से वंचित रह जाऊँगा।' महाराज ने अश्व को एड लगायी। उन्हें लगा, गुरुदेव सम्मुख खड़े मुझे अपनी ओर बुला रहे हैं। अश्व की गति के साथ दोनों करों में करवालों की गति भी उन्मुक्त हो गयी। फिर नहीं जानते क्या हुआ ?

महाराज छत्रसाल का अश्व जब उनको लिये हुये श्री गुरुदेव के द्वार पर पहुंचा, श्री समर्थ ने ही प्रथम उन्हें पहचाना। उस समय उनकी चेतना लुप्त प्रायः थी और शरीर पर अनेक तीक्ष्ण रक्तमय आघात साथी हो रहे थे।

यह तुच्छ अधम धन्य हो गया प्रभो ? नित्य कटि पर रहनवाले अभय कर कमल आज मेरे मस्तक पर पड़े हैं। रोगी प्रलाप कर रहा था, उसके दोनों नेत्रों के कोनों से दो धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। वहाँ सबने अनुभव किया कि दिव्य सुगन्ध से वायुमण्डल पूर्ण हो गया और रोगी के मुख से एक आलोक-राशि स्पष्ट हो रही है।

बेटा ! गुरुदेव ने आगे बढ़कर शिर पर अपना अभय कर रख दिया। उनके कमल नयन रोगी के नेत्रों पर स्थिर हो गये थे। श्वास की गति बढ़ी शरीर में हरकत हुई और

प्रलाप समाप्त हो गया। रोगी के मुख पर विद्यमान प्रकाश उसके सर्वाङ्ग में व्याप्त हो गया हो।

प्रभु! रोगी ने गद्गद् कण्ठ से कहा और नेत्र खोलने के साथ ही वह आश्चर्यमूक हो गया। एक क्षण वह देख लेना चाहता था कि स्वप्न देख रहा है या सत्य। मेरे प्रभु! मेरे गुरुदेव! कोई रोके, इसके पूर्व वह शय्या से वेगपूर्वक उठकर चरणों में प्रणिपात हो चुका था।

मेरे लाल! उन महत्तम के नेत्र भी भर आये और बैठकर उसके मस्तक को गोद में ले लिया। उन्होंने कहा—'क्षत्रसाल! मेरे अदम्य ऋजेय शूर!' शिर पर कोमल कर फिर रहे थे और वाणी वात्सल्य-विभोर होकर रुद्ध हो गयी। उन्होंने आशीर्वाद दिया—

"छत्ता तेरे राज में
धक-धक धरती होय।
जित-जित तेरो हय फिरै
तित तित फत्ते होय॥"

और हुआ भी यही, कभी क्षत्रसाल युद्ध में मुसलमानों के समक्ष पराजित न हुये और थोड़ी सैन्य संग्रह करके एक महान् विजेता के रूप में इतिहास में प्रसिद्ध हुए। केवल अपने सद्गुरु की कृपा से।

—×०×—

नर-देह

[श्री जगदीशशरण बिलगैयाँ 'मधुप' तंत्रशास्त्री, पट्टापुरा, दतिया(म.प्र.)]

माटी के खिलौना नर नेक तो विचार कर,
तेरो तन सिर्फ एक चमड़े को थैला है।
विधि ने बनायो घट कच्चौ ही सँवार दियो,
जाने कब फूट जाय ऐसे ये थैला* है॥
मल-मल फुलैल तेल चमड़ी चमकाय लई,
वनिता वृन्द वैनन में नीको यह छैला है।
कहते जगदीश 'मधुप' वासना को वासन* यह,
भक्ति और योग बिन पुरीष पात्र मैला है॥

पुष्पांकित दोनों शब्द बुन्देली भाषा के हैं।
थैला—(मिट्टी का मझोला बर्तन) वासन (बर्तन)

दिल्ली में योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज का :—

योग प्रचार का व्यापक कार्य-क्रम

[श्री रामेश्वरदास जी भार्गव]

गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी आनन्द कन्द श्री सद्गुरुदेव अपने दिल्ली के शिष्य-परिवार की अनुनय-विनय पर दिल्ली में पधारे। वस्तुतः श्री सद्गुरुदेव के कार्य-क्रमों का पूर्ण विवरण दे सकना मेरी अपनी लेखनी द्वारा नितान्त असम्भव है, परन्तु उन्हीं श्रीचरण-कमलों का सहारा लेकर मैं इस अत्यन्त मधुर एवं हृदय-स्पर्शी कार्य-क्रम का विवरण प्रस्तुत करूँगा।

श्री गुरुदेव भगवान् दिनांक ११-१२-६९ को सायं आठ बजे के लगभग यहाँ पधारे एवं २६-१२-६९ को प्रातः १० बजे तक रहे। दिल्ली नगर बहुत बड़ा है, अतः यहाँ का कार्य-क्रम दो स्थानों पर विभक्त किया गया। दिनाङ्क ११-१२-६९ से १५-१२-६९ तक ठाकुर श्री देवीसिंह सीसोदिया के निवास स्थान बी० ७५ नेताजी नगर नई दिल्ली में हुआ। ठाकुर साहब की बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि श्री सद्गुरुदेव कभी हमारे यहाँ पधारें। भक्तानुकम्पित श्री सद्गुरुदेव अपने बच्चों के संकल्प एवं इच्छाओं की रक्षा करते हैं अतः श्री देवीसिंह जी को श्री चरणों की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ हुये सारे कार्य-क्रम का भार-वहन स्वयं श्री देवीसिंह ने किया। श्री देवीसिंह के सौजन्य, कार्य-कुशलता एवं विनम्रता का वर्णन किया जा सकना अत्यन्त कठिन है। उन्होंने गुरु भाइयों के ठहरने एवं भोजन इत्यादि का प्रबन्ध सुरुचि पूर्ण ढंग से किया था। सर्दी की ऋतु में ऐसा प्रबन्ध कर सकना बहुत कठिन है। परन्तु श्री जगन्नायक प्रभुजी के बच्चों के लिये कोई भी कार्य कठिन नहीं है। यह उन दयासागर की कृपा से सहसा ही हो जाता है।

तत्पश्चात् १६-१२-६९ से २५-१२-६९ तक सदर बाजार में मन्दिर गुदड़ियान में कार्य्य क्रम आरम्भ हुआ। यह कार्य-क्रम दिल्ली का सारा प्रचार मण्डल सामूहिकरूप से कराया करता है।

दिल्ली में कुल मिलाकर पन्द्रह प्रवचन हुये। उनमें पाँच प्रवचन नेताजी नगर और शेष १० प्रवचन सदर बाजार में हुये। प्रथम व्याख्यान, में मोक्षधाम सद्गुरु-देव ने अपने बच्चों की श्रद्धा को देख कर सबको आशीर्वाद दिया और बताया कि मनुष्य को परमात्मा के निकट ले जाने

वाली एकमात्र श्रद्धा ही है। जिसको जितनी तीव्र एवं शुद्ध श्रद्धा होती है उतनी ही शीघ्रता एवं सरलता से वह मनुष्य उस ईश्वर को पहचान लेता है। ऐसा क्यों है ? इस बात को स्पष्ट करते हुये गुरुदेव भगवान् ने बताया कि वह परमात्मा श्रद्धामय ही है, अतः श्रद्धा माता की तरह से जिज्ञासु की सुरक्षा करता है। संसार में आज तक जितनी भी आश्चर्यजनक बातें सुनी जाती हैं उनमें श्रद्धा को विशेष स्थान प्राप्त है। वस्तुतः श्रद्धा से साधन में तत्परता एवं अनुरक्ति बढ़ती ही है जो सफलता का कारण बनती है।

अनन्त कृपासागर अशरण-शरण करुणा वरुणालय जगत पिता परम प्रभु श्री रामलाल जी के इस पृथ्वी पर अवतरित होने का वर्णन करते हुये श्री गुरुदेव भगवान ने बताया कि उनके इस भूतल पर आने का कारण व्यक्तिगत नहीं था प्रत्युत उन दयानिधि को अपने बच्चों की दीन-हीन दशा को देख कर दया आई जिस कारण वे अपने दिव्य-धाम श्री कैलाश पर्वतसे इस पृथ्वी पर आये। साधारणतया इस भूमण्डल की ओर तो कोई महापुरुष एक आँख खोलकर भी नहीं देखना चाहता। परन्तु जीवों की चीत्कार-पुकार को सुनकर उस परमात्मा को दया आती है और वह प्रभु 'परित्राणाय साधुनाम्' की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने आते हैं। ऐसी ही परिस्थितियों में अखिल लोक पावन हमारे दादा गुरु महाप्रभु श्री रामलाल जी इस भूमण्डल पर आये। उनका उद्देश्य संसार में अष्टांग योग का पुनर्स्थापन था। योग, परमात्मा की रहस्यमयी विद्या है जिसका अनुगमन करके मनुष्य दीनता से छुटकारा पा जाता है। प्रायः सारे भूमण्डल पर योग का स्वरूप लुप्त-सा हो गया था और योग के पवित्र नाम पर अनेकों ढोंगों एवं अनिष्ट-कारी मार्गों का प्रचार हो रहा था। ऐसी दशा में इस संसार की सुरक्षा करने के हेतु दयासागर श्री परम प्रभु जी ने अवतरित होना आवश्यक समझा।

श्री सद्गुरुदेव भगवान ने अपने इस वर्ष के प्रवचनामृत में निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डाला :—

१— योगियों की अदीन उपासना
२— समाधि लाभ के उपाय
३— ईश्वराभिमुख होना

१—योगियों की उपासना और इतर उपासना में अन्तर को स्पष्ट करते हुए सद्गुरु देव भगवान ने बताया कि योगियोंकी उपासना दीनता पूर्ण नहीं है अपितु स्पष्ट रूप से अदीन उपासना है। योगी छोटे-छोटे देवी-देवताओं के आगे हाथ फैलाकर अपनी कामनाओं की पूर्त्ति नहीं चाहता। वह उन देवी देवताओं की शक्ति के स्रोत को पहचान कर चलता है। वेदों में 'अदीना स्याम् शरदः शतम्' की प्रतिष्ठा योगियों की है। उन्होंने ही इस महा-मंत्रको सर्व प्रथम प्रतिपादित किया था। यही

कारण है कि अखिलात्मा भगवान् श्री कृष्ण ने स्थान-स्थान पर गीतोपदेश में अर्जुन को समझाया —

"तस्माद्योगी भवार्जुन"
"तस्मात्सर्वेषु कालेषु
योग युक्तो भवार्जुन"
"तस्माद्योगा युजस्व
योगः कर्मसु कौशलम्"

इत्यादि महान् योग के उपदेश दिये। तथा अर्जुन को योगी बनने का आदेश दिया।

२— समाधि लाभ के उपायों का वर्णन करते हुये गुरुदेव भगवान ने बताया कि समाधि का अर्थ है —

"समाधि समतावस्था
जीवात्मा परमात्मनः"

अर्थात् जीवात्मा की उस स्थिति का नाम समाधि है जिस स्थिति में जीवात्मा और परमात्मा में समता हो जाये। इस स्थिति को जीवात्मा अपने निरन्तर अभ्यास से उस मार्ग द्वारा प्राप्त करता है जो समाधि प्राप्त सिद्ध महापुरुषों ने अथवा स्वयं भगवान ने अवतार लेकर बताया है। समाधि लाभ का वर्णन करते हुये गुरुदेव भगवान ने बताया कि समाधि लाभ के और भी अन्य उत्कृष्ट मार्ग हैं। परन्तु उनमें सर्वोत्तम मार्ग सिद्ध महापुरुषों का शक्तिपात है। वस्तुतः समाधि लाभ तो केवल महापुरुषों के शक्तिपात द्वारा ही होता है। दूसरे मार्गों का परिणाम भी किसी न किसी महापुरुष द्वारा शक्ति पात का मिलना ही है। शक्तिपात के बिना समाधि प्राप्ति का मार्ग कोई भी नहीं है।

"समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्"

का अभिप्राय भी यही है कि शुद्ध प्रणिधान द्वारा प्रेरित हो, वह ईश्वर ही महापुरुषों के रूप में सामने आता है। अतः सिद्ध महापुरुषों की शरण अपने प्रयत्न द्वारा प्राप्त करने से मनुष्यों को शीघ्र समाधि लाभ होता है।

ईश्वराभिमुख किस प्रकार हुआ जाता है इस बात को समझाते हुये गुरुदेव भगवान् ने बताया कि केवल आँखों के सामने से गुजर जाने का नाम ईश्वराभिमुख होना नहीं है। अपितु मन से ईश्वरार्पण होना ही ईश्वराभिमुख होना है। यदि केवल सामने से गुजर जाने से ही काम चलता तो-त्रेता युग में भगवान् श्री रामचन्द्र के सामने से न जाने कितने जीव गुजरे होंगे, उन सबका मोक्ष हो जाता, परन्तु ऐसा हुआ नहीं। "सन्मुख होय जीव जब ही, कोटि जन्म अघ नाशौं तबहीं" का अर्थ है कि मन में भगवान् के मंगलमय स्वरूप का ध्यान करके उसमें तन्मय हो जाना ही ईश्वराभिमुख होना है न कि केवल सामने से गुजर जाना।

अस्तु, मैं अपनी असमर्थ सी लेखनी द्वारा अपने श्रीनाथ सर्वसमर्थ गुरुदेव भगवान् का

वर्णन कदापि नहीं कर सकता। केवल उन पतित तारक की किंचित सी दिव्य झलक का वर्णन करने में भी सफल होना मेरे लिये असम्भव है। परन्तु—

यस्य प्रसादात्पतितास्सुपावनाः
भवन्ति संसार सुतारणः शिवाः।
योगीश्वराणां परमेश्वर हरिम्,
श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये॥

—का महामंत्र मेरी रक्षा करता है। अतः यह सब कुछ श्री गुरुदेव की कृपा का ही प्रसाद है जिसके द्वारा "यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत वन्द्यते" की बात सार्थक हो जाती है।

नित्य प्रति प्रातः काल आठ बजे से लेकर ग्यारह बजे तक रोगों का निदान, गुरुदेव, दर्शन एवं संकीर्तन इत्यादि हुआ करता था। बहुत से रोगी बाहर से भी आते थे। श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार उन्हें उचित योग-क्रियाएं एवं अन्य उपचार बताये जाते थे।

इस बार दिल्ली का प्रचार कार्य क्रम गत वर्ष की अपेक्षा अधिक उल्लास पूर्ण था। उसके दो कारण थे। एक तो श्री गुरुदेव भगवान् की महती कृपा, दूसरा शामली से आयी हुई बहिन कुमारी उमाशर्मा का मधुर कथा-वाचन एवं संकीर्तन। वस्तुतः इस बार दिल्ली के कार्यक्रम में माधुर्य एवं रोचकता बहन उमा शर्मा के संकीर्तन द्वारा ही आई। उनका "अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय" का हृदय-स्पर्शी संकीर्तन एक मंत्र की तरह प्रभाव करता था। बहिन उमाशर्मा को 'श्री रामचरित मानस' के पद-गायन में सराहनीय दक्षता प्राप्त है। इसी प्रकार का सुन्दर एवं प्रभावशाली माधुर्य-पूर्ण संकीर्तन एक दिन मेरे गुरुभाई श्री ग्रोवर की धर्मपत्नी बहिन नीलम देवी ने किया था। दोनों बहिनों को शास्त्रीय संगीत का सराहनीय अभ्यास प्राप्त है। दीदी उमा शर्मा तो अपने अध्ययन-कार्य को स्थगित करके आई थीं। इस कारण मैं दीदी का विशेषरूप से आभारी हूँ। उन्होंने संकीर्तन में 'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठाम नारद" की बात साकार थी, ऐसा मैंने स्वयं अनुभव किया।

इस वैकुण्ठ-तुल्य कार्य क्रम को २५-१२-६९ की रात्रि को आगामी वर्ष तक के लिये स्थगित करना पड़ा। श्री गुरुदेव भगवान् का आगामी कार्यक्रम आगरे में २६-१२-६९ से आरम्भ होने वाला था। श्री गुरुदेव की विदाई हमारे लिये एक असह्य बात थी परन्तु भगवान् श्री कृष्ण को "देवकी ने।

आया यशोदा ने खिलाया, भक्तों ने रिझाया और गोपियों ने पाया,, वाली-बात तो होती ही है। गुरुदेव भगवान् हमारे दूसरे गुरु-परिवारों को भी अनुगृहीत करें, इस नियमानुसार उन्हें विदा किया गया। श्री गुरुदेव भगवान की आरती हमारे दिल्ली निवासी प्रबन्धकों यथा श्री मास्टर हरप्रसाद जी श्री जयप्रसाद जी श्री दर्शनानन्द जी श्री टेकराम, सौभाग्यवती अंगूरी देवी, पुष्पावती, ओमप्रकाश शर्मा एवं श्री रामेश्वरदत्त शर्मा तथा इस लेखक ने की। दिल्ली के कार्य-क्रम में बहुत लोग सहारनपुर, चण्डीगढ़, शामली, श्री सिद्ध गुफा सवाई मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद, मेरठ, रोहतक फरीदाबाद, समालखा एवं अन्यान्य स्थानों से आये थे।?

यह उन सबकी श्री गुरुदेव के चरण-कमलों में अनन्य भक्ति के परिचय का द्योत है।

अन्त में श्री गुरुदेव भगवन ने सबको आशीर्वाद देते हुये आदेश दिया कि भगवान श्री कृष्णचन्द्र द्वारा प्रशस्त एवं अन्य सभी अवतारों द्वारा अपनाये गये पवित्र योग-मार्ग पर चलने का प्रयत्न करें तथा जो इस कथनानुसार श्री गुरुदेव भगवान की बात को समझ कर चलेंगे श्री प्रभुजी उन सबका कल्याण करेंगे सबका भला होगा।

आगरा में योग प्रचार कार्य-क्रम

दिल्ली के योग-प्रचार के कार्य-क्रम के बाद श्री गुरुदेव जी ता० २६ दिसम्बर ६९ ई को तूफान मेल द्वारा आगरा पधारे। आगरे का यह कार्य क्रम श्री डाक्टर ललित-मोहन शर्मा ने कई महीने पहले ही निर्धारित करा लिया था। यह कार्य-क्रम उनका अपना निजी था। श्री गुरुदेव जी को सर्व साधारण के हितार्थ डाक्टर साहब ने स्वयं अपनी ओर से आमंत्रित किया था।

श्री डाक्टर साहब का अतुलित उत्साह सब प्रकार से सराहनीय था। उन्होंने पहले से ही इतस्तत इधर-उधर के प्रान्तों में रहने वाले गुरु भाई बहिनों को उत्सव में सम्मिलित होने को निमंत्रण पत्र भेज दिये थे। आगरा शहर के कोने-कोने में श्री गुरुदेव जी के आगमन की सूचनार्थ बड़े-बड़े इश्तहार लगवा दिये थे। हजारों की संख्या में छोटे-छोटे सूचना पत्र छपवाकर जन साधरण मे बटवा दिये थे। इसके अतिरिक्त आगरा शहर के धनीमानी पदाधिकारी एवं सब प्रकार से गण्य मान्य व्यक्तियों के लिए उनके पतों पर निमंत्रण पत्र भेजकर सभी को सादर आमन्त्रित कर दिया था। डा० ललितमोहन शर्मा एवं सौभाग्यवती

उनकी धर्मपत्नी का अलौकिक उत्साह यह बतला रहा था कि इन दोनों के मन में कूट-कट कर कितनी पवित्र सेवा की भावना भरी हुई है।

भव्य स्वागत

'तूफान मेल' का आगरा पहुंचने का समय लग-भग दो बजे का था। किन्तु २६ दिसम्बर को कारणवश ट्रेन कुछ देर लेट हो गई और निर्धारित समय का अतिक्रमण करके लगभग १ घंटा लेट होकर ३ बजे वह आगरा कैन्ट स्टेशन पर पहुंची। आगरा कैन्ट स्टेशन का दृश्य दर्शनीय था। डाक्टर साहब द्वारा आमन्त्रित किये हुए कई सौ की तादाद में भाई व हन उपस्थित थे। उनके हाथों में गद के फूलों की लम्बी-लम्बी मालायें थीं स्टेशन का समूचा प्लेटफार्म जन समूह से शोभा पा रहा था। गाड़ी के स्टेशन पर रुकते ही भावुक युवकों ने श्री गुरुदेव जी के डिब्बे को घेर लिया। जो पहले से ही दिल्ली से ही पुष्प मालाओं से सुशोभित आ रहा था। श्री गुरुदेवजी को गगनभेदी जय-ध्वनियों के बीच उत्साह पूर्वक गाड़ी से उतारा गया। डब्बे से श्री गुरुदेवजी के बाहर आते ही श्री गुरुदेव जी की जय हो। योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी की जय हो। सिद्धगुफा सवांई की जय-जय हो। योगिराजश्री चन्द्रमोहन जी की जय-जय हो। आदि आदि जयकार की ध्वनियों से रेलवे प्लेट फार्म गूंज उठा।

श्री डाक्टर साहब व उनकी धर्मपत्नी श्री बृजरानी, पुत्री आभा, सौभाग्यवती उनकी बहिन पूर्णादेवी आदि सभी की विचित्र दशा थी। उनके कंठ प्रेम- विह्वलता से अवरुद्ध से हुए जा रहे थे। शरीरों में कंपन आभासित होता था। मानो अपनी अमूल्य निधि को पाकर आज निहाल हो गये हों। बड़े गद्‌गद् हृदय से बड़े प्यार पूर्वक श्री गुरुदेव जी के गले में पुष्प मालायें अर्पित कीं फिर क्या था सभी भाई बहिन चारों तरफ से उमड़ पड़े और श्री गुरुदेव जी के गले को लम्बे-लम्बे पुष्पहारों से इतना अधिक भर दिया कि वह अपने गले से बार-बार मालायें उतारने में थकावट महसूस करते थे। श्री गुरुदेव के दायें-बायें चलने वाले अन्य गुरुभाई पुष्प मालाओं के भार को सभाले लिए जा रहे थे। भारी भीड़ के साथ श्री गुरुदेव जी स्टेशन से बाहर आए। स्टेशन से बाहर शोभा यात्रा के लिए डाक्टर साहब की निजी कार फूल-मालाओं से सुसज्जित खड़ी थी। श्री गुरुदेव जी यथा स्थान कार में जाकर बैठ गये। सत्संगी भाई चारों तरफ से कार पर फूलों की वर्षा कर रहे थे।

शोभा-यात्रा का एक दृश्य

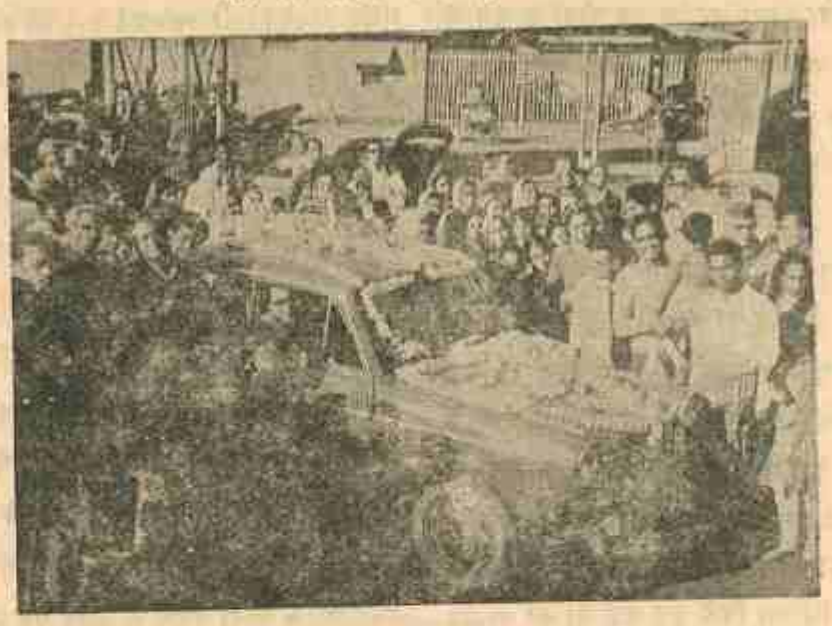

डा० ललितमोहन पुष्प-मालाओं से सज्जित हुई कार को स्वयं चला रहे हैं श्री गुरुदेव उनके समीप ही दूसरी ओर कार में विराजे हैं। श्रद्धालु भक्त-समुदाय आगे-पीछे दायें-बायें कार के साथ-साथ चल रहा है।

आगरा कैन्ट स्टेशन से डाक्टर साहब की कोठी पर जाने के लिए कार में बैठकर आगे बढ़े उस दृश्य की शोभा बहुत ही विचित्र थी। कार को डाक्टर साहब स्वयं चला रहे थे कार के आगे-पीछे इधर-उधर काफी भाई-बहिनों तथा अन्य लोगों की भारी भीड़ थी। गगनभेदी जयकारों के साथ श्री गुरुदेवजी की कार धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। कार के सामने संकीर्तन-मंडल का अद्भुत दृश्य था।

संकीर्तन-मंडल

शोभा-यात्रा में कार के सामने आगरा कैन्ट रेलवे स्टेशन पर काम करने वाले युवकों का एक उत्साही संकीर्तन-मण्डल था जिनके प्रमुख कार्य-कर्त्ता प्रेम-विह्वल हो गाते जा रहे थे। योग सुधा बरसाने आगये हमारे प्रभु जी। भक्तों की बिगड़ी बनाने आगये हमारे प्रभुजी। इसी प्रकार विविध ध्वनियोंमें संकीर्तन करते हुए शोभा-यात्रा का जुलूस डाक्टर साहब की कोठी के मुख्य द्वार तक पहुँचा। मुख्य द्वार विविध प्रकार के तोरण और पताकाओं से सुसज्जित था। वहाँ पर भी मुख्य द्वार से पंडाल तक भारी जन-भीड़ खड़ी थी।

पंडाल की शोभा

धनै-धनै श्री गुरुदेवजी की सुशोभित गाडी पण्डाल के नजदीक आयी पण्डाल की अद्भुत शोभा दृष्टिगोचर होने लगी लगभग १५० फुट या दो सौ फुट समकोण दायरे में पण्डाल अद्भुत सजाया गया था जिसकी शोभा देखते ही बनती थी। पण्डालकी झालरों के नीचे चारों ओर ऊंची-ऊंची कनातें लगा देने के कारण वह विशाल पण्डाल अतिशय शोभा पूर्ण भवन-सा दिखलाई दे रहा था। पण्डाल के बीच में लगभग तीन-तीन गज की दूरी पर खूंटे लगाकर और उन पर रस्सियें बांधकर इस प्रकार की सड़क बना दी गई थी कि जिससे सुबह-शाम दोनों समय श्री गुरुदेवजी अपने सिंहासन तक पहुंचा करते थे। यह बीच की सड़क ही स्त्री और पुरुषों के भागों को अलग-अलग दरसाती थी। प्रातःकालीन एवं सायंकालीन आरती के समय यह पण्डाल विशाल सभा भवन के मानिन्द दिखाई देता था। आरतीके समय सहस्रों नर-नारियों की भीड़ से पूरा स्थान भरा दिखाई देता था। उपस्थित जनसमुदाय को श्री प्रभुजी के दर्शनों की भारी लगन लगी हुई थी। सायंकाल आरती के बाद नमामीश शम्भो। नमामीश शम्भो

श्री सद्गुरुदेव की मंगल आरती

चित्र में आगरा-प्रचार के कार्य्य-क्रम में डा. ललितमोहन और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ब्रजरानी देवी भाव-विभोर होकर श्री गुरुदेव की मंगल आरती कर रहे हैं।

की पवित्र ध्वनि से आकाश गूँजता था। कितने ही स्त्री-पुरुष मूर्तिवत् खड़े रह जाते थे। कितनों का पांचों वायु एकत्रित करने वाला भस्त्रिका प्राणायाम तीव्र गति से चलता दिखाई देता था। इन सब की ऐसी हालत देखकर सर्व साधारण जन समुदाय आश्चर्य-चकित हो जाता था। इन सभी आश्चर्य-जनक घटनाओं के कारण दिनदूनी रात चौगुनी भीड़ बढ़ती ही चली गई। श्री गुरुदेव जी महाराज ने इस पण्डाल में आठ दिन तक प्रवचन किए। और पूर्णरूपेण यह साबित करके दिखलाया कि सारे दुनिया के मत मतान्तरों का आधार एक योग ही है। नादानुसंधान की साधना करने वाले लोग नादान्वेषण में तत्पर होकर अपने आप को कृत-कृत्य मानने वाले साधकों का नाद योग से संबन्ध है। जो लोग आंखों पर अंगुलियों रखकर अभ्यास करते हैं इनका षण्मुखी मुद्रा से संबन्ध है। इसी प्रकार जो लोग लम्बी-लम्बी ध्वनियों से ईश्वर का आह्वान करना चाहते हैं उनका भृङ्गी नाद से संबन्ध है। परिणामतः भारतवर्ष में व अन्य देश देशान्तरों में कोई ऐसा सम्प्रदाय नहीं जो योग से विमुख हो।

अन्य कार्यक्रम

श्री गुरुदेवजी अपने नैत्यिक कार्य क्रम का सुचारु रूप से नियमानुसार पालन करते थे। प्रातः काल नैत्यिक सत्संग आरती पूजन एवं ध्यानाभ्यास के कार्य-क्रम के बाद श्री गुरुदेव जी रोगियों का निरीक्षण करते थे। रोगियों की भारी भीड़ पहले से ही आकर उपस्थिति हो जाया करती थी। श्री गुरुदेवजी स्वयं एक एक रोगी से पूछते थे और रोग के पूरे निदान को जानकर उपयुक्त साधन पर्चियों पर लिखा देते थे। और उन्हीं साधनों को कराने के लिए श्री गुरुदेवजी के शिष्य ब्रह्मचारी ओ३मप्रकाश पालीवाल, ब्रह्मचारी केशवदेव, ठा० पातीराम एवं श्री रामगोपाल आदि बड़ी उत्सुकता पूर्वक कराते थे। स्त्रियों को साधन कराने के लिए डाक्टर साहब श्री ललितमोहन शर्मा की धर्मपत्नी सौभाग्यवती बृजरानीजी व बाबूराम शर्मा की पत्नी सौ० विद्यावती आदि-आदि देवियां बड़ी तत्परता से संलग्न रहती थीं। इस दस दिन के अल्पीय काल में बहुत भारी संख्या में योग साधनों की निःशुल्क-चिकित्सा से लोगों ने अनुपम लाभ उठाये। यह कार्य लगभग दोपहर के १२ बजे तक चलता रहता था।

इसके बाद भोजन करते तथा भोजनोपरान्त थोड़े से विश्राम के पश्चात् श्री गुरुदेवजी अपने नागरिक प्रचार-कार्यों चले जाया करते थे। जो उनके सत्संगी बालकों ने अपने अपने निवास स्थानों पर पहले से ही निर्धारित किये हुए थे। शहर के इन कार्य-क्रमों में प्रथम कार्य-क्रम श्री दुष्यन्त-सिंह जेलर जिला कारागार आगरा वालों ने किया। यह श्री गुरुदेवजीके अत्यन्त भावुक एवं कृपा पात्र शिष्य है। इन्होंने भी अपनी कोठी पर श्री गुरुदेवजी के स्वागत का उच्चतम प्रबन्ध किया हुआ था। मुख्य मार्ग से अपनी

कोठी तक आने के मार्ग में कई तोरण-द्वार सजाये गए थे। श्री गुरुदेवजी की कार श्री दुष्यन्त-सिंह की कोठी के सामने के मुख्य द्वार पर पहुंची तो उस समय गगनभेदी जय ध्वनियों से आकाश गूंज उठा। जिला कारागार के बंदी भी बंदी गृहों से जयध्वनि उच्चारित कर रहे थे। दर्शकों की भारी भीड़ सड़क के दोनों ओर पंक्ति बद्ध खड़ी थी। जिला कारागार के पुलिस गार्डस ने सैनिक ढंग से गुरुदेव को अभिवादन किया और उत्साहपूर्वक

डिस्ट्रिक्ट जेल पर

उसी समय रायफलों के फायर किये। सजे हुए द्वार पर श्री गुरुदेव की कार रुकी और वहाँ पर आरती के लिए सजाये हुये अनेक ज्योतिपूरित थाल से जेलर साहब व उनकी धर्मपत्नी सुशीलादेवी ने श्री गुरुदेव की आरती की और भारी भीड़ के साथ उन्हें फिर बिछाये हुए शुद्ध वस्त्रों के पुष्पांचित मार्ग से कोठी के प्रांगण में पहले से ही निर्मित दिव्य सिंहासन पर बैठाया गया। सिंहासन पर बैठने के बाद पुनः गुरुदेवजी की आरती-

जेलर श्री दुष्यन्तसिंहजी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीलादेवी श्री गुरुदेवजी को पुष्प माला अर्पित करने के पश्चात् उनकी वन्दना कर रहे हैं।

पूजन सुगन्धित बड़े-बड़े पुष्प-हारों से किया। उसके बाद शान्त वातावरण हो जाने के बाद गुरुदेवजी ने अपने ध्यानाभ्यासी बच्चों के ध्यानानुभव सुनते। उनमें से स्वयं जेलर साहब ने अपने कई बंदियों से (जो उनके सहवास में आया करते थे) ध्यानानुभव सुनवाये जो अति उत्तम थे। इसके साथ साथ उन्होंने अपनी सह धर्मिणी सुशीला

देवी की कई ध्यानानुभव की दिव्य घटनायें सुनाईं जो उनके ध्यानाभ्यास की निर्मलता को स्पष्ट प्रगट कर रही थीं। जेलर साहब ने कहा कि एक रोज मेरी धर्मपत्नी सुशीलादेवी ने मुझे घर में स्वयं बतलाया कि देखो जेल से फलां बैरक का कैदी दीवाल लांघकर भागने की चेष्टा कर रहा है। किन्तु श्री प्रभु जी उसको जाने नहीं दे रहे हैं। उसके कथनानुसार जब मैंने जाकर देखा तो उसका कहना यथार्थ पाया था। बंदी भागने के लिए तीन बार दीवाल पर चढ़ चुका था किन्तु वह बार-बार फिसल जाता था। समय पर जाकर उसे पकड़ लिया गया और उसकी चेष्टा निष्फल रही। दूसरी घटना उन्होंने बतलाई कि एक दिन उन्हें किसी बंद की जेल से निकल कर भाग जाने की पूरी पूरी आशंका हुई और उस बंदी को काफी तलाश कराया गया किन्तु प्रयत्न निष्फल रहा। वह बन्दी नहीं मिला व उसके न मिलने पर स्वयं जेलर साहब बड़े चिन्तित हुए।

उनकी बढ़ी हुई चिन्ता को देखकर ध्यानाभ्यास में बैठी हुई उनकी धर्मपत्नी ने किसी बच्चे से कहलाया कि जेलर साहब से कह दो कि बंदी भागा नहीं है वह फलां बैरक में सो रहा है। उसके कथनानुसार उस बैरक में जाकर जब कैदी को देखा गया तो वस्तुतः वह वहाँ सो ही रहा था। इस सौभाग्यवती के इस प्रकार के अनुभव देखकर व बढ़ते हुए बुद्धि कौशल को देख कर सब को अति प्रसन्नता हुई। उसके बाद जेलर महोदय से व अन्य सत्संग में आने वाले सत्संगियों से अनेकानेक दिव्यानुभूतियें सुनकर श्री गुरुदेव जी को भारी प्रसन्नता हुई और उपसंहार में श्री गुरुदेव ने व्याख्यान देते हुए बतलाया कि योग-विद्या ही इस प्रकार की विद्या है कि यस्मिन् ज्ञाते सर्वं मिदं ज्ञातं भवति। अर्थात् जिसके जान लेने पर सभी कुछ जाना जाता है। तत्पश्चात् श्री गुरुदेवजीको श्री सिंह ने अपना निवास-स्थान, पूजा स्थान आदि दिखलाए जो अत्यन्त सराहनीय व शोभनीय थे। इसके बाद बहांसे विदा होकर श्री गुरुदेव अपने आवास स्थान डा० ललितमोहन की कोठी पर आगये एवं नित्य कृत्य के बाद रात्रि का कार्य-क्रम नैत्यिक आरती भाषणादि का पूरा किया। यह दिनचर्या नियमानुसार निभाते हुए श्री गुरुदेवजी अपने सत्संगियों से आमन्त्रित होकर उनके यहां प्रचारार्थ भी गये। श्री ब्रजेन्द्रसिंह सहायक स्टेशन मास्टर आगरा कैन्ट

अशोककुमार कोठी नः १. अ गान्धी नगर आगरा में गये

बहुत ही उत्साह पूर्ण कार्य-क्रम था यहां पूर्ण विनय व नम्रता से श्री गुरुदेव का अर्चन पूजन किया गया

श्री हरिप्रसाद शर्मा लँगड़ा की चौकी बाईपास आगरा

यहां का कार्य-क्रम भी बहुत ही सुन्दर व प्रभावशाली रहा, दर्शनार्थियोंकी बहुत भारी भीड़ थी व श्रोतागण ध्यान से श्री गुरुदेव का प्रवचन सुन रहे थे।

डा० वीरेन्द्रसिंह कोठी न० २२ खन्दारी लाजपत कुंज, आगरा

यह प्रोग्राम भी बड़ी धूम-धाम के साथ हुआ व सराहनीय रहा, यहाँ पर श्री गुरुदेवजी ने अपने भाषण में बताया कि योग विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिससे रुका कुछ जाना जा सकता है। आरती पूजन अनुनय विनय से किया गया कालिज के बहुत से अध्यापक यहाँ उपस्थित थे।

श्री ताराचन्द्र शर्मा कोठी न० १ नगर आगरा में

यहाँ पर भी प्रोग्राम भजन कीर्तन गान्धी उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ सबने मिल कर श्री गुरुदेव का अर्चन-पूजन किया।

पद्मसिंह पुनिया पाड़ा आगरा

यहाँ का प्रोग्राम भी सराहनीय था इनका प्रथम प्रयास था जो बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ।

श्री आर. एन. शर्मा महर्षि

सुपरिन्टेन्डेण्ट इंजीनियर नहर विभाग के यहाँ सत्संगार्थ गये वे उपर्युक्त सब स्थानों में कार्यक्रम रखने से भिन्न-भिन्न क्षेत्र के निवासियों तक योग का सन्देश पहुंचा और बहुत से लोगों ने लाभ उठाया।

श्री महर्षि जी की कोठी पर सूरदास और मीराबाई के पद गाये गये जिनमें वातावरण बड़ा ही सरस बना रहा।

आगरा कैण्ट पर कार्यक्रम २६ दिसम्बर से ४ जनवरी सन् ७० तक डा० श्री ललितमोहन शर्मा की कोठी पर नियमानुसार चलता रहा। बीच बीच में जिला मेरठ रमाला गांव के रहने वाले श्री इन्दु शर्मा जो भजनोपदेशक ने अपने सुमधुर भजनों द्वारा उपस्थित जनता को योग की ओर आकर्षित किया और नये सजे भजन तैयार करके सुनाये।

विदाई का दृश्य

४ जनवरी सन् १९७० ई० आगरे के इस कार्य-क्रम का पिछला दिन था। यद्यपि यह विदाई कोई बहुत दूर की विदाई नहीं थी। आगरे से सतांई आश्रम कुल १४ ही मील है किन्तु फिर भी सत्संगियों की विदाई का दृश्य देखा नहीं जाता था। आंखों से आंसुओंका प्रवाह अनवरत जारी था कई भाई बहिन बेहोश हो हो कर के पृथ्वी पर गिर रहे थे। और श्री गुरुदेव जी के बार-बार समालने पर भी समाले नहीं जा रहे थे। श्री डाक्टर ललितमोहन शर्मा व उनकी धर्मपत्नी की दशा देखते ही बनती थी। श्री डाक्टर साहब व उनकी धर्मपत्नी कितने पुण्यात्माहै। इन दोनों ने दश दिन तक आगन्तुक भाई-बहिनोंको जो सेवा थी वह बहुत ही सराहनीय थी। रोगियों के भले के लिए जितना अधिक-से-अधिक सहयोग दिया जा सकता था इन्होंने सरलता पूर्वक दिया। यह दोनों प्राणी सरोपकार की साक्षात् प्रतिमूर्ति दिखलाई दे रहे थे। इस सारे कार्य-क्रम के बाद ४

जनवरी सन् १९७० ई० की सत्संगियों की भारी-भीड़ से विदाई पाकर श्री गुरुदेव जी योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुरु आश्रम सत्तांई चले गये। वे वहां जाकर अपने अन्यान्य कार्यों में संलग्न हो गये।

विदाईसे पहिले दिन तीन तारीख की शाम को आगरा कैन्ट के कर्मचारियों ने उत्तम-उत्तम पद व भजन आदि सुनाये जो बहुत ही भावपूर्ण थे उनमें से एक भजन यहां दिया जा रहा है:—

भजन

योग की महिमा जान मूरख योग की महिमा जान ॥
बड़े भाग्य अवसर यह पाया।
मत चूके नादान ॥ योग की० ॥
बड़े भाग्य मानुष तन पायो।
इन्द्रिन बस भटक्यो भरमायो।
दुखपाये अनजान ॥मूरख योग की० ॥
आत्म-ज्ञान हृदय में जागे,
बस हो इन्द्री दुख सब भागे।
मिलती मोक्ष महान ॥ मूरख योग की० ॥
फांसी छूट जाय कालकी,
शरण लो महाप्रभु रामलाल की।
श्री चन्द्रमोहन पहचान ॥ मूरख योग की० ॥
सच्चा यह दरबार खुला है।
योग सुधा का कलश मिला है।
करले जी भर पान ॥ मूरख योग की०॥
सुखी होय जीवन इस जग में,
कोई न रोकेगा मग में।
श्री चन्द्र गुरू को जान ॥ मूरख मेरा ॥
लीला गुरु की अजब निराली।
जाओ चरण कमल बलिहारी।
धरिले प्रभु रामलाल को ध्यान ॥ मूरख० ॥

सत्यं-शिवं-सुन्दरम्

[श्री बनवासी]

ध्यान दृश्यावलियाँ बड़ी ही दिव्य और अलौकिक होती हैं। एक दिन की ऐसी ही अलौकिक अद्भुत किन्तु प्रेरणाप्रद दृश्यावली का वर्णन सुनिए।

× × ×

शिलासीन हो जैसे ही एक संध्या को हम ध्यान पर बैठे एक सुरम्य उपवन का दृश्य सामने आया। जिधर भी इस उपवन में दृष्टि जाती थी सभी ओर वसन्त का वैभव बिखरा हुआ नजर आता है। उपवन के एक कोने में एक पर्वतीय शृङ्ग से एक निर्झर अपना स्वच्छ जल प्रवाहित कर रहा था। इस निर्झर के जल में अनेक प्रकार के पक्षी और जल-जीव क्रीड़ा कर रहे थे।

× × ×

कुछ देर तक निर्झर के निर्मल प्रवाह का आनंद लेने के उपरान्त जैसे ही ऊपर दृष्टि उठाई तो देखा प्रभु जी एक आभामय आसन पर विराजे हुये हैं। अपनेराम ने उन्हें सादर प्रणाम किया। उन्होंने मुस्कराते हुए आशीर्वाद दिया और पूछा—बोलो बनवासी क्या चाहते हो ?

× × ×

मैंने कहा—महाराज ! जब आपही मिल गये तब क्या पाना शेष रहा। अगर चाहना है तो यही कि आपके दिव्य-रूप का दर्शन यह नेत्र इसी प्रकार करते रहें। 'तथास्तु' कहकर प्रभु जी की वह पावन मूर्ति आखों से ओझल हो गई। फिर देखा उसी आसन पर स्वामी विवेकानंद विराजे हुए हैं। मैंने स्वामी जी को सादर प्रणाम किया।

× × ×

वे बोले-बैठो बनवासी। मैं यहाँ प्रभुजी के आदेश से ही आया हूँ। मैं तुम्हें कुछ उपयोगी उपदेश देता हूँ जिसे जगत हितार्थ तुम दूसरों को बता देना। मैं ध्यानस्थ होकर सुनने लगा।

× × ×

स्वामी जी ने कहा—जो कोई अपने को दुर्बल समझता है वह भ्रान्त है। जो अपने को अपवित्र मानता है वह भ्रान्त है। ऐसा व्यक्ति जगत में एक असत् विचार प्रवाहित करता है।

× × ×

याद रक्खो कि न धन का मूल्य है। न नाम का न विद्या का। केवल चरित्र ही कठिनाई रूपी पत्थर की दीवाल में छेद कर सकता है।

—: श्री गुरुदेव जी का आगामी कार्य्य-क्रम :—

दिनाङ्क	विवरण
३१-१-७० को	कलकत्ता से कालका मेल द्वारा इलाहाबाद को प्रस्थान ।
१-२-७० से १०-२-७० तक	इलाहाबाद माघ मेले में योग-प्रचार कार्य-क्रम, योग-प्रचार कैम्प बांध के नीचे गंगा की रेती में (नजदीक मानस महारथी एवं श्री चक्रपाणि जी) । पता — द्वारा-डा० बी. पी. जौहरी, १३५ अलोपीबाग, इलाहाबाद ।
११-२-७० से २०-२-७० तक	योग-प्रचार कार्य-क्रम मिर्जापुर पता- द्वारा—वैद्य लखनलाल ऊमर वैश्य, सोमनाथ आयुर्वेद भवन, डंकीनगंज, मिर्जापुर
२०-२-७० से २४-२-७० तक	योग प्रचार कार्य-क्रम काशी हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस । पता:- द्वारा-श्री काशीनरेश लाल कुल सचिव (कुल सचिव कार्यालय) काशी हिन्दूविश्व विद्यालय, वाराणसी ५ ।
२४-२-७० से २-३-७० तक	कछवा में योग प्रचार कार्य-क्रम पता: द्वारा श्री स्वामी प्रसाद ऐडवोकेट मु.पो. कछवा, जिला मिर्जापुर ।
२-३-७० से ४-३-७० तक	बरैनी में योग प्रचार कार्य-क्रम पता: द्वारा श्री महेन्द्रनारायण कोटपर मु.पो बरैनी मिर्जापुर ।
५-३-७० को	सवाई आश्रम को प्रस्थान
६-३-७० से ८-३-७० तक	सीस्ता में योग प्रचार कार्य-क्रम पता :— शाह ज्वालाप्रसाद की बड़ी कोठी मु० सीस्ता पो० जारऊ जिला मथुरा यू० पी० ।

सिद्धयोग विशेषांक

अर्थात्

तृतीय वर्ष प्रवेशांक-विशेषांक

तिरंगे तथा इकरंगे चित्रों से शोभित

पृष्ठ संख्या एक सौ, दुरंगा आकर्षक आवरण पृष्ठ

योग के सैद्धान्तिक लेखों, सन्तों के प्रेरणाप्रद चारु चरित्रों, कथाओं, उपदेशों,
कहानियों और सुकवियों की ओजस्वी कविताओं से परिपूर्ण

प्रभुजी की आगामी जयन्ती के पुण्य अवसर पर अप्रैल १९७० में प्रकाशित होगा।

इस अंक का अलग से मूल्य होगा दो रुपया

किन्तु

१०) रु० भेजकर वार्षिक ग्राहक बनने वालों से
कोई अतिरिक्त मूल्य न लिया जायगा।

अतः जिन ग्राहकों का दूसरे वर्ष का वार्षिक शुल्क १२ वें अङ्क के साथ समाप्त हो रहा है उन्हें अपने तीसरे वर्ष का मूल्य १० रु० शीघ्र भेज देना चाहिए ताकि अलभ्य सामग्री वाला यह विशेषाङ्क उन्हें समय पर मिल सके। नये ग्राहकों को भी यह विशेषाङ्क उनके वार्षिक मूल्य में ही मिलेगा।

व्यवस्थापक 'सिद्धयोग' श्री सिद्ध गुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई-आगरा।

कार्य-क्रम (पृष्ठ ४८ से आगे)

९-३-७०	को	रामचरित मानस, सत्संग टूंडला में व्याख्यान विषय-योग और ईश्वर का अभिकरण।
१०-३-७० से १९-३-७० तक		लाडवा में योग प्रचार कार्य-क्रम पता—द्वारा—लाला साधूराम अठवरिया मु० पो० लाडवा, जि० करनाल
२०-३-७० को		आश्रम सवांई को प्रस्थान,
२१-३-७० से		आश्रम-निवास (पूरा चैत्र मास)

उपरोक्त कार्यक्रम निश्चित् ही है। फिर भी श्री गुरुदेव जी की सुविधा और आज्ञानुसार इसमें आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है। इससे आगे का कार्य-क्रम आगामी पत्रिका में प्रकाशित होगा।

—व्यवस्थापक

कर्मयोग

सफलता प्राप्त करने के लिये, समृद्धिशाली बनने के लिये आपको अपने काम से अपने जीवन के दैनिक व्यवहार से अपने शरीर और पुट्ठों को कर्मयोग की प्रयोगाग्नि में भस्म कर देना होगा, दहन कर देना होगा। आपको अवश्य ही उनका प्रयोग करना होगा। आपको अपना शरीर और मन खर्च करना पड़ेगा। उन्हें जलती हुई अवस्था में रखना पड़ेगा। अपने शरीर और मनको कर्म की सलीब पर चढ़ाओ, कर्म करो, कर्म करो; और तभी आपके भीतर से प्रकाश प्रदीप्त होगा।

× × ×

शरीर निरन्तर काम में लगा रहे और मन आराम और प्रेम में डूबा रहे तो आप यहीं इस जीवन में पाप और ताप से मुक्ति पा सकते हैं।

× × ×

ईश्वर आपके द्वारा काम करने लगे। फिर आपके लिए कर्त्तव्य-जैसी कोई चीज न रहेगी। ईश्वर आपके भीतर से चमकने लगे; ईश्वर आपके द्वारा प्रकट हो; ईश्वर में ही रहिये-सहिये; ईश्वर को खाइये और ईश्वर ही पीजिये; ईश्वर में श्वास लीजिये और सत् का साक्षात् कीजिए। शेष काम अपने आप होते रहेंगे।

राम आपसे कहता है, अपना कर्त्तव्य करो, पर न कोई प्रयोजन हो और न कोई इच्छा। अपना काम भर करो; काम में ही रस लो; क्योंकि काम स्वयं सुखरूप है; क्योंकि ऐसा काम ही साक्षात्कार का दूसरा नाम है।

अपने काम में जुट जाओ; क्योंकि काम तो तुम्हें करना ही होगा। काम ही तुम्हें साक्षात्कार पर पहुंचा देगा। इसके सिवा काम का और कोई हेतु न होना चाहिए।

स्वामी रामतीर्थ

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज-आगरा—१